कर्तारसिंह दुग्गल

चोली-दामन

राजपाल एण्ड सन्ज़
कश्मीरी गेट
दिल्ली

प्रथम संस्करण

मूल्य
साढ़े तीन रुपये

नवीन प्रेस, दिल्ली ।

श्री करतारसिंह दुग्गल पंजाबी के एक प्रमुख साहित्यकार हैं। उनकी रचनाओं का स्थान पंजाबी साहित्य में बहुत ऊँचा है। ऑल-इण्डिया रेडियो से उनकी रचनाएँ प्रायः प्रसारित होती रहती हैं। हिन्दी पाठकों के सम्मुख यह उनकी प्रथम पुस्तक आ रही है। आशा है हिन्दी जगत् में भी श्री दुग्गलजी की इस पुस्तक को समुचित आदर प्राप्त होगा।

—प्रकाशक

सती पोठोहारनों के नाम—

१

सोहणे शाह सोचता—आज चारों ओर सन्नाटा क्यों छाया हुआ है? जिन खेतों में किसान साँझ-सवेरे हल चलाते, रखवाली करते, धान गाहते, ढोर-डंगर चराते, हँसते-खेलते, माहिये की तानें उड़ाते दिखाई दिया करते थे, आज उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वे क्यों मौन हैं? रुण्डमुण्ड बबूल के पेड़ पर एक चिड़िया अकेली बैठी थी; खानकाह के खण्डहरों में से हवा सीटियाँ बजाती बह रही थी। सोहणे शाह की दूध जैसी सफेद दाढ़ी बिखर-बिखर जाती और वह एड़ियाँ उठा-उठाकर, आँखें फाड़-फाड़कर देखता पर दूर क्षितिज तक चारों ओर उसे कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दे रहा था।

सोहणे शाह की समझ में कुछ भी न आ रहा था—

आखिर उसने सोचा—कहीं गाँव में कोई अपशकुन न हो गया हो। पहले तो उसके मन में आया कि वह लौट पड़े। किन्तु फिर उसने सोचा—खुदाबख्श और वह दो थोड़े ही हैं। यदि कोई ऐसी-वैसी बात हुई, तो

वह चुपके से मेंहदी की पुड़िया उसके बड़े कमरे में रख आएगा; कितने दिनों से वह मेंहदी-मेंहदी पुकार रहा था। कल जब सोहणे शाह कचहरी से लौटा तो मार्ग में उसने आध सेर मेंहदी खरीद ली।

"खुदाबख्श सुसरे के बाल सफेद हो गए हैं।" तोपखाना बाजार के दुकानदार ने जब सोहणे शाह की ओर अर्थपूर्ण आँखों से देखा, तो सोहणे शाह ने उसे बताया—"न जाने कहाँ धूप में बैठा बाल सफेद करता रहा है।" जब तक वह अपनी घोड़ी पर सवार होकर चल न पड़ा, इधर-उधर की बातें करता रहा।

गाँव में दाखिल होकर उसने देखा—बूढ़ी बेरी तले कोई बेर नहीं गिरा रहा है, चुन नहीं रहा है, खा नहीं रहा है। वैसे हर घड़ी लड़के और लड़कियों की टोलियाँ बेरी से चिमटी रहती थीं। फजल चौकीदार के दालान में चितकबरी कुतिया सोहणे शाह को देखकर आज पहली बार भौंकी, वहीं बैठी-बैठी बल खाती रही जैसे धरती में गड़ी हुई हो। बाईं ओर दूर नौगजे पीर की खानकाह थी और आज उस पर चाँद-तारे वाला नया हरा झण्डा लहरा रहा था—ऊँचा और लम्बा जैसे आकाश से बातें कर रहा हो। चन्नो महरी अपनी भट्ठी को लीप-पोत रही थी।

"अम्माँ, आज इस गाँव के लोग कहाँ गए?"

"चौधरी, मस्जिद में कोई मौलवी आया हुआ है।" और चन्नो महरी ने अगला वाक्य—"ये नामुराद नित-नया एक गुल खिला देते हैं," अपने पोपले मुँह ही में बुड़बुड़ाते हुए कहा।

लेकिन सोहणे शाह को निश्चय था कि खुदाबख्श अवश्य हवेली ही में होगा, उसने कभी ये धर्म और मस्जिद नहीं अपनाए थे। वही बात हुई। जब सोहणे शाह ड्योढ़ी में दाखिल हुआ, तो सामने बरामदे में खुदाबख्श बैठा था और उसकी चारपाई-से-चारपाई जोड़े एक चोगे वाला फकीर उसके कान में कुछ फुसफुसा रहा था।

सोहणे शाह को देखकर दोनों चौंक पड़े और 'बिस्मिल्ला-बिस्मिल्ला' कहते हुए बरामदे में से उठकर दालान में आ गए।

सोहणे शाह ने सोचा—यह अपरिचित पीर नौगजे-पीर की समाधि पर जियारत करने आया होगा। न जाने कितनी देर तक वे बाहर दालान में बैठे हुए समाधि के चमत्कार की चर्चा करते रहे।

सोहणे शाह की अपनी इकलौती बेटी राजकर्णी के मुँह पर जब दाद हो गया था और पीछा छोड़ने ही में न आता था तो उस समाधि पर दीये जला-जलाकर उसका पिण्ड छूटा था। खुदाबख्श कहता—"यदि भाभी को भी यहाँ ले आते और मेरा कहा मान लेते···" सोहणे शाह और खुदाबख्श की अभी तक यह धारणा थी कि सोहणे शाह की पत्नी इतनी जल्दी न मर जाती। सबका विचार था कि 'साए' का इलाज डाक्टरों और हकीमों के पास नहीं होता। सोहणे शाह अभी तक उस बात को बार-बार याद करके दुःख से हाथ मलता—"किन्तु आई हुई मौत का कोई इलाज नहीं और भाग्य सीधे हों तो कोई बाल बाँका नहीं कर सकता।" यह सोचकर वह अपने को ढारस बँधाता। राजकर्णी और उसके पड़ोस में रहने वाली उसकी सहेली सतभराई ने उसी समाधि की चारदीवारी में मित्रता की गाँठ बाँधी थी। सोहणे शाह ने स्वयं यहाँ आकर सतभराई के पिता अल्लादित्ता के साथ पगड़ी बदली थी—और आज पन्द्रह वर्ष बीत चुके थे उनकी मैत्री को, एक चारपाई पर बैठकर वे खाना खाते थे—और जब उनके सन्तान हुई, तो दोनों के घर एक-एक बेटी हुई। अभी अल्लादित्ता की पत्नी को परलोक सिधारे तीन मास नहीं हुए थे कि सोहणे शाह की पत्नी भी चल बसी। लोग यही कहते—"उस पर पड़ोसिन की छाया थी।"

खुदाबख्श ने फिर पीर जी को बताया कि सोहणे शाह हर साल नौगजे पीर की समाधि पर भण्डारा कराता है, जहाँ इलाके के सब लोग आकर इकट्ठे होते हैं, और क्या सिक्ख, क्या मुसलमान, सभी एक साथ बैठकर खाते-पीते और कव्वालियाँ सुनते हैं।

और सोहणे शाह हैरान था—हरे चोगे वाले पीर ने अभी तक कोई बात मुँह से नहीं निकाली थी। कितनी देर तक वह उनकी बातें सुनता रहा, सुनता रहा—कभी-कभी उसके चेहरे पर मुस्कान फैल जाती,

जिसे वह तत्काल दबा लेता ।

उठने से पहले पीर ने सोहणे शाह से अखबार का कोई समाचार पूछा । सोहणे शाह कचहरी से लौटता हुआ अखबार अवश्य पढ़कर आया करता था । अभी तक तो उसे चारों ओर एक अशान्ति-सी फैली हुई दिखाई दे रही थी । नवाखली में मुसलमानों ने हिन्दुओं को मारा था और बिहार में बदला लिया जा रहा था । सोहणे शाह बार-बार अफसोस से हाथ मलता और बार-बार पीर जी से पूछता, "दुनिया को यह क्या हो रहा है ?"

सोहणे शाह हैरान था कि एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी पर कैसे हाथ उठा सकता है ? और उसकी आँखों के सामने राजकर्णी और सतभराई हँसती-खेलती हुई, गाती हुई, एकसाथ उठती-बैठती हुई, एक साथ सोती-जागती हुई आ जातीं । अल्लादित्ता की हवेली में बँधे हुए उसे अपने ढोर-डंगर याद आए, और अपने घर में पड़े हुए अल्लादित्ते के गेहूँ के बोरे भी । वह सोचता, कितनी-कितनी रात गए तक वे हर रोज चारपाई से चारपाई जोड़े हुए तारों की छाया में इधर-उधर की बातें करते रहते थे । रात को यदि एक खाँसता, तो दूसरा जाग पड़ता, और फिर वे इधर-उधर की बातें छेड़ देते । सोहणे शाह को यदि कभी कचहरी में देर हो जाती, तो अल्लादित्ता गाँव के बाहर बड़े पुल पर बैठकर उसकी राह देखा करता, उधर से गुजरने वालों से अपने मित्र के सम्बन्ध में पूछता रहता । लोग साइकलों पर से उतर-उतरकर और छकड़ों को रोक-रोककर अल्लादित्ता को सलाम भी करते और यह भी बताते कि उन्होंने उसके मित्र को कहाँ देखा था । कभी-कभी कोई अलबेला अल्लादित्ता से दिल्लगी भी करता —"चौधरी ! सोहणे शाह के बिना तुम्हारा मन नहीं लगता क्या ? वह कोई बच्चा तो नहीं कि रास्ता भूल जाएगा ! क्यों बावला हो रहा है, चौधरी ?"

पीर वैसे-का-वैसा चुपचाप उठकर चला गया । खुदाबख्श और सोहणे शाह कितनी देर तक दालान में बैठे बातें करते रहे । खुदाबख्श के

पड़ोस में लुहार रहते थे—ठक्-ठक्, ठन्-ठन् और टिक्-टिक् की आवाजें आती रहीं, आती रहीं—

"खुदाबख्श, तेरा पड़ोस बड़ा खराब है !"

"नहीं शाहजी, आजकल इन सुसरों के पास काम ही बहुत है।"

और फिर अभी ये बातें कर ही रहे थे कि पिछली ओर से दीवार फाँदकर फत्तू लुहार दौड़ता हुआ आया—"देखना चौधरी, क्या यह ठीक है ?" एक नया सान-चढ़ाया नेज़ा वह खुदाबख्श को दिखाने के लिए लाया, लेकिन सोहणे शाह को देखकर जैसे वह जहाँ खड़ा था, वहीं जमकर रह गया।

खुदाबख्श ने उसकी घबराहट को टालने की बेकार कोशिश की। सोहणे शाह की समझ में नहीं आ रहा था कि आज ये लोग उससे क्यों बिदक रहे हैं।

और फिर खुदाबख्श ने सोहणे शाह को लाख विश्वास दिलाया कि अगली नेज़ाबाज़ी की तैयारी के लिए वह एक खास नेज़ा बनवा रहा था, किन्तु सोहणे शाह को उसकी बातों पर विश्वास नहीं आया और वह उसी घड़ी वहाँ से चल पड़ा।

रास्ते-भर खुदाबख्श ऐसे नास्तिक की पीर के साथ कानाफूँसी, फिर उसे देखकर दोनों का चौंक पड़ना, फिर फत्तू लुहार का घबरा जाना, सोहणे शाह के मन में इन बातों से खलबली मचती रही।

बड़ी सड़क को पार करते समय सोहणे शाह ने एक और पीर को देखा—सिर सफाचट, हरा चोगा पहने हुए, नंगे पाँव, वह 'ढल्ले और अड्डियाले' की ओर जा रहा था।

"पीरजी, सलाम अर्ज करता हूँ !" सोहणे शाह ने स्वभाव के अनुसार कहा, लेकिन पीर ने सोहणे शाह की ओर आँख उठाकर देखा तक नहीं।

सोहणे शाह हैरान था—

फक़रो के गाँव के पास से जब वह गुज़र रहा था तो उसने एक और पीर को देखा—भरपूर नौजवान, बालों के पट्टे रक्खे हुए।

"पीर जी, सलाम अर्ज करता हूँ," सोहणे शाह ने अपने मित्र अल्लादित्ते के धर्म का फिर सम्मान किया। यह पीर भी चुपचाप उसके पास से गुजर गया।

सोहणे शाह सोचता कि यह कैसे नए-नए पीर बरसाती कीड़ों की तरह चारों ओर से निकल आए हैं। किसी को इतना भी पता नहीं कि वह उस सारे इलाके का चौधरी है। उसकी धरती सबसे अधिक है और उसके साहूकारे की ईमानदारी की चर्चा प्रत्येक की जिह्वा पर थी।

सोहणे शाह को आज की शाम अवकाश था। उसका जी चाहा कि वह फकरों के गाँव में से होकर जाए, अपने गुमाश्तों की सुध-बुध लेता जाए। एक गली में से वह गुजर गया, दूसरी गली में से गुजर गया, जब सोहणे शाह तीसरी गली में से मुड़ रहा था, तो उसने देखा—सैदन लुहार के दालान में पाँच भट्टियाँ तप रही हैं। परिवार के सब छोटे-बड़े काम में जुटे हुए हैं। सोहणे शाह और आगे बढ़ा, और उसने देखा कि दालान नेजों, बेलचों और बर्छों से भरा पड़ा था।

"क्या कोई जंग शुरू हो गई है? इन नेजों का और इस सब-कुछ का क्या करोगे?" सोहणे शाह ने सैदन से पूछा।

"यह छावनी का 'ऑर्डर' है," सदैन ने तड़ाक से घड़ा-घड़ाया उत्तर दिया। शेष सभी उसका मुँह ताकने लगे।

सोहणे शाह की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। छावनी वालों ने इतने नेजों, इतने बेलचों और इतने बर्छों का क्या करना था? और फिर उसे फत्तू लुहार के घर की भागदौड़ याद आई, वहाँ कैसा कोलाहल मचा हुआ था—उसके पास भी शायद फ़ौजी-आर्डर होगा, फिर सोहणे शाह ने सोचा—शायद कोई ठेकेदार आकर उन सबको ठेके दे गया है और वह सिर मारता हुआ सैदन के दालान में से निकल आया।

और अभी वह उनके घर के दालान में से निकल ही रहा था कि सैदन लुहार का काम में व्यस्त एक लड़का खिलखिलाकर हँस पड़ा, फिर एकाएक जैसे किसी ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया हो, सहसा जैसे किसी ने उसकी

हँसी जकड़ दी हो। सोहणे शाह ने सोचा कि लड़के को यों हँसता हुआ देखकर सैदन ने उसे भिड़का होगा, उसके किसी बड़े भाई ने संकेत किया होगा।

नदी पार करके सोहणे शाह जब दूसरे किनारे पर पहुँचा, तो उसने देखा—सामने एक टीले पर तीन-चार गुण्डे तुर्रे छोड़े हुए लम्बी-लम्बी बाँहों से कभी एक ओर कभी दूसरी ओर इशारा कर रहे हैं और बातें भी किये जाते हैं। एक के हाथ में एक लम्बा-चौड़ा काग़ज है, जिसमें से वे कुछ पढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं।

कोई नया पटवारी होगा, शायद कोई अपनी जमीनों की पड़ताल करवा रहा होगा—सोहणे शाह ने सोचा। शाम हो रही थी।

सोहणे शाह की समझ में नहीं आता था कि आज उसका दिल क्यों बैठता जा रहा था, उसे बुरे-बुरे विचार क्यों आ रहे थे—घर पहुँचकर वह चारपाई पर गिर पड़ा, उसने न कुछ खाया, न कुछ पिया।

२

घर में न राजकर्णी थी और न पड़ोस से सतभराई की आवाज़ आ रही थी। चौधरी अल्लादित्ता पिछले तीन दिनों से बाहर किसी काम से गया हुआ था।

रात घोर अँधेरी थी।

नौकर-चाकर अपने-अपने काम से छुट्टी पा चुके थे। चौके में महरियाँ खाना बनाकर खाने वालों की प्रतीक्षा में जम्हाइयाँ ले रही थीं।

सोहणे शाह पलंग पर पड़ा हुआ अपने अन्तर की किसी छाया के नीचे घुटा जा रहा था। विचित्र-से दृश्य उसकी आँखों के सामने घूमने लगते थे—

उसने सुना था कि नवाखली में मुसलमान पड़ोसियों ने हिन्दुओं के मोहल्लों-के-मोहल्लें जलाकर भस्म कर दिए थे। बच्चों, बूढ़ों और युवकों को काटा गया, नोचा गया, टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया था। मुसलमान कहते थे कि हिन्दू उनका पाकिस्तान नहीं बनने दे रहे थे।

···और बिहार के हिन्दुओं को शिकायत थी—मुसलमान उनके हिन्दुस्तान की आज़ादी की राह में काँटे बिछाते थे और उन्होंने अपने पड़ोसियों की फसलें बरबाद कर दीं, उनकी स्त्रियाँ छीन लीं, उनके पुरुषों के सामने उनका अपमान किया। गोलियाँ चलाते और गँडासों से काटते हुए वे थक गए, गोलियाँ समाप्त हो गईं लेकिन मुसलमान समाप्त न हुए।

सोहणे शाह अपनी विचारधारा में बह रहा था कि उसे अपने घर के पिछवाड़े की ओर मुसलमानों के मोहल्लों में छोटे-छोटे बच्चे 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाते हुए सुनाई दिए। प्रतिदिन सायंकाल वे बच्चे यों ही किया करते थे—एक छड़ी के साथ एक हरे रंग का चीथड़ा बाँध कर गलियों में दौड़ते रहते और 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाते रहते। इनमें अक्सर हिन्दू और सिक्ख बच्चे भी आकर शामिल हो जाते और मिलकर नारे लगाते, खेलते और गाते रहते।

'जिन्दाबाद-जिन्दाबाद' कहती हुईं, खिलखिलाकर हँसती हुईं, राजकर्णी और सतभराई गली में से आ रही थीं। सोहणे शाह उन्हें देख रहा था बच्चे 'राजो' सतो' 'बहन-बहन' करके उन दोनों से चिमट रहे थे।

फिर राजकर्णी ने कहा—"पाकिस्तान!"

सब बच्चे उसके पीछे चिल्लाए—"जिन्दाबाद!!"

फिर सतभराई ने कहा—"पाकिस्तान!"

सब बच्चे फिर चिल्लाए—"जिन्दाबाद!!"

और इस प्रकार जो कोई भी गली में से गुजरता, बच्चे उसे पकड़ लेते और उसे उस समय तक न छोड़ते, जब तक वह नारा न लगा दे, चाहे वह व्यक्ति कोई सिक्ख हो, चाहे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान हो! और बच्चे, बूढ़े, युवक, स्त्रियाँ और पुरुष सब-के-सब हँसते हुए बच्चों के इस खेल में शामिल होते रहते।

राजकर्णी और सतभराई दालान में आकर फिर खिलखिलाकर हँसने लगीं। उन दोनों की हँसी सारे गाँव में प्रसिद्ध थी। छोटी-सी बात पर यदि हँसना आरम्भ कर देतीं, तो हँसती ही रहतीं, हँसती ही रहतीं—आधे-आधे

दिन, आधी-आधी रात हँसती रहतीं। चौधरी अल्लादित्ता ने तो आज आना ही नहीं था, पर लड़कियों का विचार था कि सोहणे शाह भी अभी तक नहीं लौटा था।

हँसतीं-हँसतीं दोनों सहेलियाँ गाने लगीं—

उच्चियाँ लम्बियाँ डालियाँ,
विच गुजरी दी पींग वे माहिया।
पींग झुटेंदे दो जणे—
आशिक ते माशूक वे माहिया।
पींग झुटेंदे ढह पये,
हो गये चकनाचूर वे माहिया।

और सोहणे शाह लेटे-लेटे उनको गाते सुनता रहा। ग्वाले की लड़की का विवाह था और उसने सोचा—दोनों वहीं से आ रही होंगी। जब किसी विवाह वाले घर गीत आरम्भ होते, ये दोनों वहाँ जरूर गीत गाने के लिए जातीं और फिर कितनी-कितनी देर घर आकर भी रौनक किये रखतीं। कभी कोई तान छेड़ देतीं, कभी कोई गीत गुनगुनाने लगतीं, लेकिन जब कभी गातीं, एक स्वर होकर गातीं!

सोहणे शाह सोचता कि राजकर्णी और सतभराई दोनों जवान हो गई हैं, अब वह दोनों के हाथ पीले कर देगा। अल्लादित्ता तो भला आदमी था, उसने कभी इस बात की चिन्ता नहीं की थी, ऊपर-तले दो बरातें बुलवाकर वह निश्चिन्त हो जाएगा।

गली के पिछवाड़े बच्चे 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगाए जा रहे थे। इस बार ताई 'पारो' उनके हत्थे चढ़ गई—ताई पारो, जो जगत-ताई थी, जो हर समय पुरुषों के समान लाठी लेकर चलती। मर्द, औरतें, बच्चे और बूढ़े सभी ताई पारो से डरते थे। यदि किसी से नाराज हो जाती, तो भरे बाजार में खड़ी होकर उसे मन-मन-भर की गालियाँ देती, जिन्हें सुनकर पुरुष भी धरती में गड़ जाते। और अब जबकि बच्चों ने ताई पारो को घेर लिया था, तो न जाने कहाँ से वह तपी हुई आ रही थी,

पंजे भाड़कर बच्चों के पीछे पड़ गई।

"ठहरो! तुम्हारी माँ का पाकिस्तान-जिन्दाबाद निकालूँ!" आगे-आगे बच्चे और पीछे-पीछे ताई पारो दूर गली का मोड़ मुड़ गए। बच्चे शोर मचाते, हँसते और सहमे हुए निरन्तर भागते जाते, पीछे-पीछे पारो पाकिस्तान को लाख-लाख गालियाँ देती हुई लाठी घुमाती दौड़ती गई।

सोहणे शाह ने सोचा कि वह अवकाश के समय पारो को समझा देगा कि वह पाकिस्तान के बारे में इस प्रकार हँसी न उड़ाया करे, कहीं बात का बतंगड़ ही न बन जाए। उसने सुन रखा था कि शहर में इसी प्रकार हँसी-मजाक में लोगों ने वैर मोल ले लिया था।

सामने गली में फिर पारो हाँपती हुई गालियाँ देती आ रही थी। उसके पीछे-पीछे बच्चे शोर मचाते हुए पारो को चिढ़ा रहे थे।

राजकर्णी और सतभराई ने इतने में एक और गीत छेड़ दिया—

निक्का मोटा बाजरा माही वे,
मैंडा कौन चरेसि ढोला!

भूखे-प्यासे सोहणे शाह की लेटे-लेटे आँख लग गई—

"यदि अब्बा बाहर गया हुआ हो तो चचा भी जहाँ तक बस चलता है, घर नहीं आते!" सतभराई ने कहा—

"कहीं आकर ताऊ को लाने न चले गए हों!" राजकर्णी सोचती।

अभी-अभी सोते हुए सोहणे शाह ने सपने में देखा कि नेजों, छवियों, बर्छों और बेलचों से भरे हुए छकड़े छावनी की ओर जा रहे थे और ठेकेदार को उनके बदले में सरकार की ओर से बन्दूकों, पिस्तौलों और राइफलों से भरे हुए ट्रक मिल रहे थे।...और फिर बन्दूकें चलने लगीं, राइफलें आग उगलने लगीं। आतिशबाजी-सी छूट रही थी, अनार छूट रहे थे, गोले फट रहे थे; ढोलक, चिमटे और शहनाइयाँ बज रही थीं। एक सौ एक घुड़-सवारों की सतभराई और राजकर्णी की बरात आ रही थी। मुण्डेरों पर से फूल बरसाए जा रहे थे, रोशनी से सारा गाँव जगमगा रहा था—दीपमाला के दिन सोहणे शाह अमृतसर के दरबार साहब में तीर्थयात्रा पर गया,

कितनी जगमगाहट थी वहाँ! किस प्रकार भीड़ थी वहाँ! कन्धे-से-कन्धा छिल रहा था और इस कोलाहल में राजकर्णी सोहणे शाह से कहीं बिछुड़ गई……

सोहणे शाह पसीने-पसीने हुआ चौंककर उठ खड़ा हुआ।

राजकर्णी उसे जगा रही थी—"हम तो नीचे बैठीं आपकी राह देख रही थीं।" राजकर्णी ने शिकायत की।

और सोहणे शाह अपने-आप को सँभालकर उसके साथ खाना खाने के लिए नीचे उतर आया। दालान में बैठी सतभराई ने सोहणे शाह को सलाम किया। "सलाम बेटी"—सोहणे शाह ने इतना कहा और चारपाई पर उसके पास जा बैठा।

सोहणे शाह ने देखा कि राजकर्णी और सतभराई के दुपट्टे एक ही रंग के थे, एक ही कपड़े के दो सूट उन्होंने पहने हुए थे, एक ही से बेल-बूटे, एक ही से फूल—बिल्कुल एक ही सा उनका डीलडौल था—एक को छिपा दो और दूसरी को दिखा दो!

सतभराई आयु में चाहे तनिक छोटी थी, किन्तु मुसलमान जमींदार की बेटी डीलडौल में राजकर्णी के बराबर पहुँच चुकी थी।

"अल्लादित्ता सवेरे आ जाएगा," सतभराई को चुप देखकर सोहणे शाह ने उसे बताया, और फिर वह दोनों से दिन-भर की बातें करने लगा।

ज्वाले जमादार की बेटी की बातें होती रहीं—अपने विवाह पर आप गीत गाती थी। क्या मजाल जो कभी सिर पर आँचल रक्खे! हर घड़ी कुछ-न-कुछ बोलती रहती, पुरुषों और स्त्रियों को तड़ाक-पड़ाक जवाब देती।

सोहणे शाह ने बताया कि ज्वालासिंह एक बहुत बड़ा अफ़सर था और अब पेन्शन लेकर अपने गाँव में आया था। उसकी बेटी ने गाँव के बाहर ही जन्म लिया, शहरों में उसका पालन-पोषण हुआ; इसलिए अगर उसकी ये बातें उन्हें अजीब-सी लगती थीं तो इसमें उस बेचारी का अधिक दोष नहीं था।

सतभराई कहती—"चाचा, मैं भी पढ़ूँगी!"

और सोहणे शाह लाड़ से कहता—"तू पढ़ने वाली बन, मैं सवेरे ही इन्तजाम किये देता हूँ!"

और फिर सतभराई छोटी-छोटी फ़रमाइशें करती रही—"मुझे शहर से यह ला दो, वह ला दो, मैंने ऊँची एड़ी वाली जूती अभी तक नहीं पहनी। ज्वाले जमादार की बेटी काली ठंडी ऐनक लगाती है।" कभी सतभराई कहती—"उसे ऐनक बहुत अच्छी लगती है," कभी कहती - "ऐनक भी क्या लगाने की चीज है!" और फिर ज्वाले की बेटी का रंग तो सांवला था, राजकर्णी की राय में सतभराई के चेहरे पर काले फ्रेम वाली ऐनक बहुत भली मालूम होगी।

सोहणे शाह सोचता कि अबकी बार वह शहर गया, तो कचहरी से लौटते हुए उसकी मँगवाई हुई एक-एक चीज वह ला देगा।

और फिर सतभराई ने और आँचल फैलाया, कहने लगी कि उन्हें सिनेमा देखे बड़ी देर हो चुकी है। और सुनने में आ रहा था कि छावनी में उन दिनों एक बहुत अच्छी फ़िल्म लगी हुई थी। इस बात में राजकर्णी भी उसकी हाँ-में-हाँ मिला रही थी। सोहणे शाह वचन दिये जाता, दिये जाता, उसे कभी इतना साहस नहीं हुआ था कि वह सतभराई और राजकर्णी की इच्छाओं को पूरा करने से इन्कार कर दे।

चौधरी अल्लादित्ता की और बात थी। जीवन के बारे में उसका दृष्टिकोण बड़ा कठोर था। जहाँ तक बस चलता, वह किसी बात पर समझौता न करता। आज सोहणे शाह अकेला लड़कियों के हत्थे चढ़ गया था, उन्होंने जी भरके उससे वचन लिये।

और सोहणे शाह अपने वचनों से टलने वाला इन्सान नहीं था!

३

सोहणे शाह की अभी आँख लगी ही थी कि किसी ने ड्योढ़ी का दरवाजा खटखटाना शुरू कर दिया।

वह उठा। बाईं ओर पलंग पर राजकर्णी और सतभराई बेसुध सोई पड़ी थीं।

सोहणे शाह बाहर चला गया—

गाँव के तीन मुसलमान और दो सिक्ख नवयुवक आये थे। उन्होंने चौधरी सोहणे शाह से सारा हाल कह सुनाया—

अगले दिन पोठोहार में चारों ओर आग भड़कने वाली थी। हर हिन्दू और सिक्ख को मारा जाना था, उनकी सम्पत्ति को फूँका जाना था, उनके गुरुद्वारों और मन्दिरों में गोहत्या की जाने वाली थी, उनकी पत्नियों और बेटियों का सतीत्व भंग किया जाने वाला था।

प्रत्येक मुसलमान नेजे, छुरी, बेलचे, बर्छे और बन्दूक से लैस किया जा चुका था। हर मुसलमान से मस्जिद में ले जाकर कसम उठवाई गई थी,

लोगों ने कुरानशरीफ़ आँखों से लगाकर प्रतिज्ञा की थी। पीरों ने, मौलवियों ने, सैयदों ने घर-घर घूमकर यह आदेश दिया था कि कोई हिन्दू-सिक्ख जीवित नहीं बचना चाहिए।

रावलपिण्डी की 'जामा मस्जिद' से यह फरमान जारी हुआ था कि हिन्दुओं और सिक्खों की औरतों को मुसलमान बना लेना सवाब है; काफ़िरों की जायदाद लूटने वाले के पास ही रहेगी; काफ़िरों के जितने कोई सिर उतारेगा, उसके उतने ही गुनाह कट जाएँगे; कम-से-कम छः काफ़िरों को मौत के घाट उतारने वाला सीधा जन्नत में जाएगा; बच्चे बच्चों को कत्ल करें, बूढ़े बूढ़ों का गला दबाएँ, जवान जवानों का खून करें, सिर्फ हिन्दुओं और सिक्खों की दूध-मक्खन पर पली हुई पोटोहारनों को बिल्कुल न छेड़ा जाए—वे तो इलाके की रौनक हैं!

अगले दिन 'हजारे' की ओर से पठानों ने भी पहुँच जाना था, 'छछ' के छः-छः फुट ऊँचे युवकों ने देहात के गिर्द घेरा डाल देना था। प्रत्येक पड़ोसी के लिए पड़ोसी की छुरी चमक उठनी थी।

ट्रक वालों को पता था कि उन्होंने ट्रक कहाँ ले जाने थे, ऊँट वाले जानते थे कि उन्हें कहाँ-कहाँ पहुँचना है, छकड़े वालों को ज्ञान था कि छकड़े में कौन-सा सामान कहाँ ले जाना है।

यह भी निर्णय हो चुका था कि कौन लोग कहाँ जाकर टूट पड़ेंगे। पहले हमला किस ओर से आरम्भ किया जायगा, किस-किस घर को आग लगानी है, किस-किस को बचाना है।

मीरासियों ने ढोल पीटने थे, शहनाइयाँ बजानी थीं। जिन्हें बन्दूक चलानी नहीं आती थी उन्होंने नेजों और छवियों से लड़ना था। जो दिल के जरा कमजोर थे, उन्होंने मिट्टी के तेल और पेट्रोल के कनस्तर उठाए रखने थे और जब मैदान साफ हो, तो आग लगानी थी। कसाइयों को तैयार किया गया था कि वे तेल के कड़ाह बच्चों को तलने के लिए तैयार रखें, आग के अलाव में बूढ़ों को भूनें और हठीली स्त्रियों को गली में उल्टा लटकाएँ।

प्रत्येक गाँव का चित्र तैयार हो चुका था। प्रत्येक गाँव के निवासियों के नामों की सूची तैयार हो चुकी थी। इस बात का भेद भी लगा लिया गया था कि गाँव में किस-किस व्यक्ति के पास कौन-कौन-सा शस्त्र है, और जिन्हें पहले ही हल्ले में समाप्त कर देना था, उनके नाम अलग लिख लिए गए थे।

हिन्दुओं ने मुसलमानों के साथ बिहार में भी बिल्कुल ऐसा ही किया था, और पोठोहार के मुसलमानों ने फैसला कर लिया था कि वे एक-एक खून का बदला दस-दस जनों से लेंगे। कोई किसी के रोकने पर रुकने वाला नहीं था, कोई किसी के हटाने पर हटने वाला नहीं था। जो लड़ने-मरने के लिए तैयार नहीं थे उनके नाम आदेश जारी किये गए थे कि वे इधर-उधर हो जाएँ। *इस्लाम पहले ही खतरे में था, इसलिए अब और बाधा न डालें!*

···और सोहणे शाह ने सोचा—तभी शायद अल्लादित्ता तीन दिन से बाहर गया हुआ था; इस विचार के आते ही वह हक्का-बक्का खड़ा सिर हिलाने लगा।

सोहणे शाह के हाथ-पाँव सुन्न हो गए। उसके शरीर से जैसे सारे-का-सारा लहू खिंचा जा रहा था, उसका सिर कितनी देर तक हिलता रहा,—आखिर दरवाजे का सहारा लेकर वह देहली पर बैठ गया।

वे पाँचों युवक बोलते जा रहे थे—

धमियाल के मुसलमान रजवाड़ों ने वचन दिया था कि वह किसी से कुछ नहीं कहेंगे, बल्कि उन्होंने तो किसी को छावनी भिजवा दिया था कि वह ट्रकों का प्रबन्ध कर आए ताकि उस गाँव के बच्चे-बच्चे को शहर पहुँचा दिया जाय!

"सोहणे शाह, तू किस सोच में गुम हो गया है! यदि हमारे जिस्म में जान हुई तो कोई तेरा बाल भी बाँका नहीं कर सकेगा—" मुसलमान युवकों ने बार-बार वचन दिया।

निर्णय यह हुआ कि उस घड़ी के बाद कोई भी गाँव की सीमा से बाहर

न निकले। गाँव के बाहर जाने वालों की जिम्मेदारी कोई भी नहीं लेगा—बाहर के लोग किसी के वश में नहीं थे।

चौधरी ने आखिर यह सुझाव दिया कि घर-घर घूम-घूमकर यह बात सबको बताई जाय। विशेष रूप से जो लोग किले में काम करते थे, उन्हें यह बताया जाना बहुत जरूरी था। चौधरी ने बहुतों का नाम ले-लेकर बताया, बेचारों के पास साइकलें नहीं थीं और मुँह-अँधेरे ही घर से निकल जाया करते थे।

सुनते ही लोगों ने सामान बाँधना आरम्भ कर दिया, सारे गाँव में कुहराम मच गया। भरे कमरे देखकर किसी की समझ में यह बात न आती कि क्या रक्खे और क्या छोड़े। नवयुवतियाँ अन्दर चीखती फिरतीं, माता-की नजरों में न जाने क्या-क्या कुछ लिखा हुआ देखतीं। धरती जगह नहीं दे रही थी कि वे उसमें समा जाएँ। कोई सोचती—मैं कुएँ में कूद जाऊँगी; कोई सोचती—मैं चौबारे पर चढ़कर नीचे छलांग लगा दूँगी; किसी ने कहीं से अफीम निकाल ली, किसी ने संखिया ढूँढ लिया, कोई अपने भाई से आग्रह करती और कोई पिता से विनय करती कि वे अपने हाथों से उनका गला घोंट दें। कोई मिट्टी का तेल सँभालकर रखती; कई कहतीं कि हम एक-दो को मारकर मरेंगी और तीन फुट की कृपाणों की धार बार-बार तेज करतीं।

जवान लड़कों ने पत्थरों के ढेर अपने कोठों पर इकट्ठे कर लिये, पोठोहार की नोकदार और ईस्पात-ऐसी कठोर चट्टानों के पत्थर। बन्दूक वालों ने बारूद इकट्ठी करनी प्रारम्भ कर दी, तलवारों को चमकाया जाने लगा, छुरों को रगड़ा जाने लगा। बूढ़ों और बच्चों ने चाकू और छुरियां संभाल लीं।

पंचकल्याणी भैंसें अपने मालिकों को विकल देखकर बार-बार डकारतीं; हल चलाने वाले हलों के गले लग-लगकर रोते। कुत्ते चैन न लेने देते। बार-बार गली में दौड़-दौड़कर जाते। बार-बार दालान में आकर प्रत्येक के कपड़े सूँघते। अनाज से भरी हुई कोठरियाँ देख-देखकर जमींदारों के

दिल में टीस उठती। पोठोहार के खुले दालान, दालानों में 'धरेक' की छाया, बेरियों के लाल-सुर्ख बेर, लोग सोचते कि वे क्योंकर उन वस्तुओं को छोड़ सकेंगे।

सोहणे शाह बार-बार अफसोस से हाथ मलता, बार-बार सोचता—इस उम्र में मुझे यह अँधेर भी देखना था—जहाना, जुम्मां, फत्ता, सैदन, ममदू, मानूँ, दीना, शरफू—सब उसे कत्ल करने के लिए आएँगे।

सामने के पलंग पर राजकर्णी और सतभराई सोई पड़ी थी, गहरी सोई पड़ी थीं, अल्हड़ यौवन की मदमाती नींद। तारों के मन्द-मन्द आलोक में उसे इतना भी पता नहीं चलता था कि कौन कहाँ सोई पड़ी है। सोहणे शाह तो तमाम उमर कभी उनमें कोई अन्तर नही कर सका था। कई बार उसे राजकर्णी को आवाज देनी होती तो उसके मुँह से सतभराई का नाम निकल जाता; और कई बार जब वह सतभराई को बुला रहा होता, तो राजकर्णी-राजकर्णी पुकारता रहता और राजकर्णी पास ही बैठी खिल-खिलाकर हँसती रहती। सोहणे शाह सोचता—चौधरी अल्ला दित्ता अवश्य पहुँच जाएगा, अगले दिन का उसका वचन था और जीवन में आज तक उसने अपना वचन भंग नहीं किया था।

लेकिन वे पाँच नवयुवक न जाने उससे क्या कह गए थे! अल्ला-दित्ता से भी प्रतिज्ञा लेने को कहा गया होगा, उसके सिर पर भी कुरान शरीफ रखा गया होगा, उसे भी पाकिस्तान का वास्ता दिया गया होगा। उसे भी बाहर की घटनाएँ सुना-सुनाकर उकसाया गया होगा और अल्ला-दित्ता अपनी बेटी को भी छोड़कर चला गया तो!

पलंग पर गहरी नींद में सोई हुई दो लड़कियों में से एक ने करवट बदली। एक भुजा ऊपर उठी और दूसरी ओर जा पड़ी। सोहणे शाह ने अनुभव किया, जैसे कोई इस इन्तजार में हो, कि उसकी आँख लगे या इधर-उधर हो, तो वह दौड़कर सामने के विरोधी दल में शामिल हो जाए!

सोहणे शाह की दादी ने उसे बताया था कि सिक्खों के राज्य के अन्त में किस प्रकार भगदड़ मची थी और वे लोग गुजरात से भागकर इधर

आ गए थे। पहले आकर वे 'सुक्लों' में रहे, फिर उसकी ननद ने उन्हें यहाँ बुला लिया और यहीं सोहणेशाह की सम्पत्ति बढ़ती रही और अब वह गाँव का चौधरी बन गया था।

सोहणे शाह के पिता ने उस गाँव में दिन-रात परिश्रम किया। सोहणे शाह का दादा खच्चरों और गधों पर शुद्ध घी पुँछ से लादकर लाया करता था; और सर्दियों में जब सड़कें बन्द हो जाया करती थीं, तो ईंटें और बजरी जैसी वस्तुएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया करता था। और इस प्रकार कौड़ी-कौड़ी जोड़कर उसने अपने लिये एक झोंपड़ी बनाली थी। सोहणे शाह का पिता दुकानदार था, साथ-ही-साथ साहूकारा भी किया करता, खेती-बाड़ी में भी हाथ पाँव मारता रहता, खड़ी फसल का ठेका ले लेता, ढोर-डंगर सस्ते दामों खरीद लेता और पिंडी की मण्डी में जा बेचता। जो रावलपिंडी की मण्डी से मोल लेता, उन्हें 'गोलड़े' की मण्डी में जा बेचता।

और इस प्रकार कई पापड़ बेलकर सोहणेशाह के पिता ने अपने ठौर-ठिकाने को और भी दृढ़ कर लिया था। जब उसने दुकान मोल ले ली, तो गाँव में उसका थोड़ा-बहुत सम्मान होने लगा। और फिर जब सोहणे शाह की बारी आई तो पहले उसने सोचा कि पटवारी बने; किन्तु वह अपने काम में कुछ इस प्रकार उलझ गया कि वह किसी दूसरी ओर ध्यान न दे सका। उसके पिता ने कई काम छेड़ रखे थे, फिर उसने अपने पिता से भी अधिक परिश्रम किया। परिश्रम के साथ-साथ लोगों की सेवाएँ भी बढ़-चढ़कर थीं। सारा प्रदेश 'सोहणे शाह' 'सोहणेशाह' का गुणगान करने लगा—और वह गाँव का चौधरी बन गया। जब पुराना सरपंच चल बसा, तो हर कोई—क्या मुसलमान, क्या हिन्दू, क्या सिख यही कहने लगा कि अब की बारी सोहणे शाह की थी।

सोहणे शाह ने पंचायती गुरुद्वारे का नव-निर्माण किया, संगमरमर का फर्श लगवाया। दीवारों को टाइलों से सुसज्जित किया। सोहणे शाह ने चौपाल की खानकाह की मरम्मत करवाई, तकिये को पक्का कर दिया, गली-मुहल्ले में सफाई का प्रबन्ध किया।

जहाँ तक बस चलता, लोग सोहणे शाह का कहा न टालते; चाहे झगड़ा सिक्खों में हो, चाहे झगड़ा मुसलमानों में हो, चाहे झगड़ा सिक्खों और मुसलमानों में हो। गाँव के मुसलमानों में दो धड़े बने हुए थे, यह पार्टीबाजी देर से चली आ रही थी। कई बार उनका आपस में झगड़ा हो जाता—सोहणे शाह बीच में पड़कर झगड़ा निपटा दिया करता। एक बार तो उन्होंने परस्पर गोलियाँ भी चलाईं, किन्तु सोहणे शाह के सामने सिर न उठा सके और मामला थाने तक न जा सका। पुलिस वालों ने लाख सिर पटका कि वे उस झगड़े के बारे में पर्चा लिखवा दें, लेकिन गाँव वालों में से किसी एक ने भी आकर शिकायत न की। जिसने जाकर शिकायत की थी, उसका मुँह काला करके गली-गली उसे घुमाया गया।

अभी तो पिछले सप्ताह एक झगड़ा हुआ था। अल्ला दित्ता की राय में सिक्ख ठीक कहते थे और उन्होंने जो कुछ किया था वह उचित था। परन्तु सोहणेशाह की सम्मति में सारा दोष सिक्खों का ही था। कितनी देर तक उनकी समझ में न आया कि किस पक्ष को अच्छा कहें और किसको बुरा। पाँचवें गुरु, गुरु अर्जुनदेव के पिछले गुरु-पर्व पर राशन की चीनी मुसलमानों ने इकट्ठी कर-करके सिक्ख-पड़ोसियों के लिए शर्बत की प्याऊ लगाई थी और गली-गली जाकर उन्हें ठण्डा शर्बत पिलाया था। सिक्ख और हिन्दू भी ईद के दिन गलियाँ शीशे की तरह चमकाकर रखते और अपने पड़ोसियों के घर मिठाई भिजवाते।

यदि किसी मुसलमान को मुर्ग़ा हलाल करना होता, तो चोरी-छिपे एकान्त में वे उसे हलाल करते; और यदि किसी सिक्ख को बकरा झटकाना होता, तो भीतर दूर अपनी कोठरी में ऐसा करता ताकि पड़ोसी उसका बुरा न माने।

सोहणेशाह सोचता—जैसे मुसलमान कहते हैं, यदि हिन्दू और सिक्खों को मार दिया गया, उन्हें यहाँ से भगा दिया गया तो फिर ये दुकानें कौन चलाएगा? जाटों और किसानों को कर्ज कौन देगा, उनकी चिट्ठियाँ कौन लिखेगा? जब ये आपस में लड़ पड़ेंगे, तो कौन समझौता कराएगा? उनके

दिलों में तो इतना जहर था कि एक-दूसरे को मार डालेंगे, बरबाद कर देंगे।

सामने बिछे हुए पलंगों में से एक पर फिर हलचल हुई। फिर एक भुजा उठी और दूसरी ओर जा पड़ी—एक गोरी भुजा—और सोहरोशाह उठकर देखने लगा कि किसकी नींद उचाट हो रही थी ?

४

अगले दिन राजकर्णी ने देखा कि सतभराई कोठे पर जाकर बार-बार एड़ियाँ उठा-उठाकर अपने अब्बा की बाट देख रही थी, किन्तु वह कहीं भी दिखाई नहीं दे रहा था। सवेरा दिन में बदल गया और पीले रंग की धूप फैलने लगी।

सारे गाँव में कोलाहल मचा हुआ था। सोहणे शाह के गले लग-लगकर लोग रोते, कई उसे एक ओर ले जाकर कानाफूसी करते। हाथ मलतीं और छाती पीटती स्त्रियाँ, सहमे और घबराये हुए बच्चे, वे युवक जो साहस तोड़ चुके थे, हलवाई जिनका आज बाहर से दूध नहीं आया था, कुंजड़े जिनकी आज बाहर से सब्जी नहीं आई थी—सभी एक-दूसरे का मुँह ताक रहे थे। डाकिये के आने का समय हो चुका था, न वह डाक देने आया और न वह डाक लेने आया।

सड़क, जिस पर लोग चींटियों के समान चलते, सुनसान पड़ी थी। पिछली रात को जंगली कुत्तों ने मरे हुए बछड़े का पिंजर घसीट-घसीटकर

सड़क के बीच ला फेंका था और वह वैसे-का-वैसा सड़क पर पड़ा था।

गली-गली घूमते सोहणेशाह को पता चला कि हरनामे लीखल का लड़का बसन्ता और बड़े गुरुद्वारे के 'भाई' का लड़का पंजू किसी के रोकने पर रुके नहीं थे और मुँह-अन्धेरे ही किले में अपने काम पर जा चुके थे। जो कोई उन्हें समझाता, वे उसकी खिल्ली उड़ाते। उन्होंने चौधरी के सन्देश की भी परवाह नहीं की थी। बसन्ता तो 'सुखमणी साहब!' का पाठ ही करता रहा, किसी के प्रश्न का कोई उत्तर न देता; बस इतना करता—कभी-कभी हँस देता और नियमानुसार पाठ करता हुआ लोगों के देखते-देखते चला गया। लेकिन पंजू आज अपने साथ तलवार ले गया था; यदि उसे कोई समझाता तो बार-बार म्यान पर हाथ रख-रखकर तलवार बाहर खींचता और अपने पट्ठों को दिखाता।

"क्या हमने कंगन पहने हुए हैं? क्या मैं कोई औरत हूँ जो कोई मुझ पर हाथ डाल देगा? यदि कोई मेरी तलवार के आगे खड़ा हुआ तो···" और वह इस प्रकार बोलता हुआ चला गया।

किले की सीटियाँ चीखती रहीं, किन्तु और कोई घर से न निकला। पैदल चलने वालों के लिए सीटियाँ बज चुकीं, तो साइकलों पर आने वालों के लिये सीटियाँ बजनी आरम्भ हुईं। प्रत्येक पन्द्रह मिनटों के बाद तरह-तरह की सीटियाँ लोगों को पुकारती रहीं, पुकारती रहीं। चीख-चीखकर जैसे उनका गला बैठ गया हो, किन्तु और किसी ने उधर जाने का नाम नहीं लिया।

सोहणेशाह का जी चाहा कि पिछवाड़े की ओर जाकर मुसलमानों के मुहल्लों का चक्कर लगाए, किन्तु न जाने क्यों उसके पाँव उस ओर नहीं उठ रहे थे। कई बार वह बढ़ा पर विचारधाराओं के थपेड़े खाता लौट आया।

राजकर्णी हैरान थी—चौधरी अल्लादित्ता अभी तक नहीं आया था। सतभराई के हृदय में खलबली मची हुई थी, चौधरी अल्लादित्ता यूँ कभी बाहर नहीं रहा करता था।

फिर एकाएक गाँव के बाहर निगरानी करने वाले स्वयंसेवकों ने कोला-हल मचा दिया—

फिसादी आ रहे थे—दूर क्षितिज के पास से—'ढल्ले अड्डियाले' की ओर से ढोल पीटे जाने की धीमी आवाज कानों में पड़ रही थी। अनगिनत तुर्रे चींटियों के समान चलते हुए सामने दिखाई दे रहे थे। हर घड़ी ढोल पीटे जाने की आवाजें ऊँची हो रही थीं। तुर्रे और साफ दिखाई देने लगे। सारे-के-सारे गाँव में कुहराम मच गया। कई सोचते कि बाहर नदी में जाकर छिप जाएँ, कई कहते कि पंचायती गुरुद्वारे में गुरू के चरणों पर जा गिरें, कई कहते—प्रत्येक व्यक्ति अपनी-अपनी गली में लड़े; अपने घर में या मार दे या मर जाय; कई कहते—चौधरी सोहणेशाह के चौबारे पर सभी इकट्ठे हो जाएँ, मुसलमान पड़ोसियों की भी यही राय थी। वे सोचते—यदि फिसादी बिल्कुल न माने तो बेशक गाँव को लूट लें, यदि उनकी यही धारणा हुई तो बेशक गली-गली घर-घर को जलाकर भस्म कर दें, किन्तु 'धमियाल' के किसी प्राणी पर वे हाथ नहीं उठने देंगे।

"सूअर खाएँ ये लोग—!"

"ऐसी लूट कभी सुनने में नहीं आई—!!"

"मैं कहती हूँ कि क्या उन्हें अल्ला का कोई डर नहीं ?"

"यह साली सरकार कहाँ गई—आज तो चाँदमारी भी नहीं हो रही ?"

राजकरणी और सतभराई ऊपर कोठे पर खड़ी कभी फिसादियों की ओर देखतीं और कभी उनके तुर्रों की ओर, कभी दूसरी तरफ बार-बार रावलपिण्डी की ओर छावनी के बंगलों को देखतीं, हवाई जहाजों के अड्डे पर ऊँचे उड़ते हुए सरकारी झण्डे की ओर देखतीं, और देख-देखकर उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह क्या हो रहा है, क्यों हो रहा है, किसलिये हो रहा है ?

दित्ता बढ़ई कितनी देर तक अपने हथियारों की ओर देखता रहा, बाहर खेलते हुए अपने बच्चे की ओर देखता रहा, बड़े कमरे में लगाए हुए नये फूलदार दरवाजे की ओर देखता रहा, देखते-देखते उसकी दाईं भुजा कुछ

इस प्रकार दुखने लगी जैसे वह दिन-भर विसोसा चलाता रहा हो।

सुन्दर सुनार और उसकी पत्नी, बाहर एक हवेली में कितनी देर तक गतका खेला करते थे। सुन्दर, मास्टर तारासिंह का बहुत भक्त था, और आज से छः महीने पहले जब मास्टर जी 'धमियाल' अपने ससुराल, किसी विवाह के अवसर पर आये तो उन्होंने सबको बुलाकर ख़बरदार कर दिया था—"लोगो! या तो शहरों में चले जाओ, देहात को छोड़ दो; या अगर गाँवों में रहना है तो अपने-आपको मजबूत बनाओ, अपने घरों के गिर्द मोर्चे बनाओ, चारदीवारियाँ बनाओ, तलवारें रक्खो, कृपाणों और गतके का प्रयोग सीखो, नहीं तो तुम कहीं ढूँढ़ने पर भी दिखाई न दोगे, पोटोहारियो! तुम्हारा नामोनिशान तक मिट जायगा, मुझे आँधी आती हुई दिखाई दे रही है। मैं अनुभव करता हूँ कि तूफ़ान यहीं से उठेगा। खालसे की परीक्षा का समय फिर आ रहा है।"—और मास्टर जी आधी रात तक नँन्दों के कोठे पर मिलने के लिए आए हुए लोगों को समझाते रहे।

अगली प्रातः को मास्टर जी के कहे अनुसार सुन्दर और उसकी पत्नी ने दूसरे बहुतों के साथ अमृत छका, और उस दिन से ये दोनों गाँव से बाहर अपनी हवेली में गतका खेलने लगे।

"मैं न कहती थी, मास्टर हीरा है हीरा—!"

"मैं न कहती थी कि बन्ती के पति को हर बात का पता होता है!"

"सेहरा बाँधकर हमारे पड़ोस में आया था, मैं कहती हूँ कि मास्टर-जी से तो गोरे भी कन्नी कतराते हैं।"

"आज मास्टर यदि यहाँ होते...शेरों के समान उनका चेहरा दमकता रहता है।"

"सौभाग्यवती है बन्ती, मेरी सास की सहेली थी।"

सवेरे से सुन्दर की पत्नी अपने पड़ोसियों से पागलों की भाँति बातें कर रही थी, और अब उन्होंने निर्णय किया था कि जिस प्रकार मास्टर जी ने उनसे कहा था, वे उसी प्रकार करेंगे, तलवार खींचकर बाहर निकलेंगे और शेरों की तरह जान दे देंगे।

फिर जैसे सब की जान-में-जान आगई। बाहर बैठे हुए स्वयंसेवकों ने आकर सूचना दी कि फिसादी मोरगाह वाली सड़क पर मुड़ गए थे, ढोल की आवाज ने अपनी दिशा बदल ली थी, झंडे दाईं ओर की सड़क पर हो लिए थे।

'धमियाल' के मुसलमान पड़ोसी हँस-हँसकर कह रहे थे—"किसी की क्या ताकत है कि धमियाल की ओर आँख उठाकर देख सके।"

"जभी तो हम कहें कि ये कहाँ की तैयारियाँ करके आगए।"

और यों जान पड़ता था, जैसे लोगों की आकृतियाँ फिर से हिलने-जुलने लगी थीं। पलक झपकते में दुकानदारों ने दुकानें खोलनी आरम्भ कर दीं, चूल्हों से धुँआ उठना शुरू होगया, लोग खाने-पकाने की फिक्र में लग गए।

पुरुष कहीं-कहीं टोलियाँ बनाकर खुसर-फुसर करने लगे।

राजकर्णी और सतभराई अभी तक कोठे पर बैठी हुई थीं, 'चौतरे' की ओर से कोई भी नहीं आ रहा था। सामने की सड़क जिस पर लोग चींटियों के समान चलते रहते थे, खामोश थी। राजकर्णी और सतभराई के दिलों में कई प्रकार के बुरे विचार उठ रहे थे, कभी वे कुछ सोचतीं और कभी कुछ।

वे इस तरह व्याकुल हो रहीं थीं कि उन्होंने देखा—छावनी वाली सड़क पर से फौजी लारी आ रही है, लारी गाँव में आकर रुकी। खजान उप्पल के लिए उसके भाई ने दो फौजी सैनिक और एक लारी भेजी थी। उसके घर का जिस प्रकार भी सामान उस लारी में आ सकता था, उसने लाद लिया। पहले तो लोग चुपके-चुपके खजान का रंगढंग देखते रहे, किन्तु जब दारोगा ने कहा कि उसकी जवान लड़की के बच्चा होने वाला है और वह किसी प्रकार उसे शहर उसके चचा के घर तक ले जाएँ, अधिक-से-अधिक एक ट्रंक या एक बिस्तर उसे कम ले जाना पड़ेगा, लेकिन जब खजान ने अपनी आयु-भर की मित्रता की उपेक्षा करते हुए इन्कार कर दिया तो लोग बहुत रुष्ट हुए। फौजी-सैनिकों ने बताया कि छः मील की दूरी पर

रावलपिंडी शहर में क्या हो रहा था—सारी रात गोली चलती रही थी, चारों ओर आग लगी हुई थी, सड़कें लाशों से अटी पड़ीं थीं और सरकार की समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या करे और क्या न करे!

दारोगा की नौजवान लड़की के पहला बच्चा होने वाला था। न गाँव में कोई धाय थी, न कोई नर्स; और यह भी पता नहीं था कि वह इस गाँव में कब तक रुके पड़े रहे। फिर भी खजान उप्पल को दया न आई। दारोगा बार-बार दाँत पीसता—और जब लारी चलने लगी, तो वे लोग जो खड़े सब-कुछ देख रहे थे, उन्होंने खिल्ली उड़ानी आरम्भ कर दी।

खजान का ट्रक तेज दौड़ता हुआ, दृष्टि से ओझल हो गया।

लोगों को थोड़ा-बहुत जो ढाढ़स बँधा था वह खजान के जाने के बाद टूट गया। दुकानें फिर बन्द होनी आरम्भ होगईं, लोगों ने दोबारा वस्तुएँ सँभालनी शुरू कर दीं, और जो बातें फौजी-सैनिक बता गए थे, वे सारी धीरे-धीरे गाँव में फैल गईं। हाथों में पकड़े हुए ग्रास वहीं-के-वही रह गए, गलियों में छाछ बिलोए जाने का स्वर वहीं-का-वहीं थम गया, तनूर तपते के तपते रह गए, स्त्रियाँ जहाँ कहीं भी थीं सिर पकड़कर बैठ गईं। पुरुष कभी सोचते कि लड़ते-लड़ते मर जायँगे, कभी कहते लड़ने का क्या लाभ। किसी की समझ में कुछ नहीं आता था कि क्या होगा, किस प्रकार होगा।

सोहणेशाह पिछले दो घंटों से अपने बड़े कमरे में बेसुध पड़ा था। कोठे पर बैठीं हुईं राजकर्णी और सतभराई सोच रहीं थीं कि वह शायद बाहर कहीं गया हुआ है कि अचानक दालान में अल्लादित्ता को देखकर दोनों लड़कियाँ खिल उठीं। आते ही अल्लादित्ता सोहणेशाह की देखभाल में लग गया।

चौधरी अल्लादित्ता चाहे सब की हिम्मत बँधा रहा था, किन्तु उसकी अपनी हालत भी बड़ी बुरी थी।

आखिर जब सोहणेशाह को होश आगई, तो कितनी देर तक बड़े कमरे में दोनों बैठे हुए खुसर-फुसर करते रहे।

और जब सोहणेशाह के सांस ठिकाने आए, तो अल्लादित्ता ने उसे अपनी आपबीती सुनाई। 'चौंतरे' में सारे इलाके के चौधरियों का जलसा हुआ, जिसमें बड़े-बड़े पीरों ने यह बताया कि उन्हें अपने गाँव में हिन्दुओं और सिक्खों का किस प्रकार नामो-निशान मिटा देना था। पहली बात तो यह थी कि घरों को, और हवेलियों को जलाकर भस्म कर दिया जाए ताकि वे लौटकर आने का नाम ही न लें। फिर जितने आदमी हाथ लगें उन्हें मसल-कर रख दिया जाए, बड़े-बड़े आग के अलावों में बच्चों और बूढ़ों को झोंक दिया जाय, लूट-खसोट के माल से मुसलमान पड़ोसी अपने कोठे भर लें और सरकार को इस बात का भेद पता न लगने दें। फिर उन्होंने बताया कि कैसे घेरा डालना था, कैसे हमला करना था, कैसे आग लगानी थी बेलचे कहाँ से मिलने थे, नेजे कहाँ से इकट्ठे करने थे, बन्दूकें किसके पास पड़ी थीं, छवियाँ कहाँ रखीं थीं! हरेक बात की जाँच-पड़ताल की गई, निर्णय किया गया!

अल्लादित्ता यह सब कार्रवाई सुनता रहा, फिर उठके वह सबको धिक्कारने लगा और वह अभी बोल ही रहा था कि कुछ गुण्डों ने उसे पकड़कर बाँध दिया और एक कोठड़ी के अन्दर डाल दिया।

और वह आज बड़ी कठिनता से अपनी मुश्कें खोलकर भाग आया था।

अल्लादित्ता सोचता—जैसे-कैसे भी हो, राजकर्णी और सोहणेशाह यहाँ से निकल जायँ, लेकिन अब तो 'घमियाल' के चारों ओर अलाव जल रहे थे, हर गाँव सुलग रहा था, हर मार्ग को गुण्डे घेरे बैठे थे, पग-पग पर लाशें बिछी थीं, बच्चों की, बूढ़ों की और युवकों की।

और फिर अल्लादित्ता ने कहा कि उसके घमियाल को कोई हाथ नहीं लगा सकेगा। जब तक उसके तन में साँस है, जिस गाँव में उसका राज्य है उसकी ओर कोई आँख टेढ़ी करके नहीं देख सकता। यदि राजकर्णी को वहाँ से निकलना पड़ा, तो सतभराई भी वह गाँव छोड़ जायगी। यदि सोहणेशाह को किसी ने उस गाँव से निकाला, तो वह अल्लादित्ते की लाश पर से आगे बढ़ेगा।

५

दोपहर बीती, शाम आई, किसी ने न कुछ खाया न कुछ पिया। 'रत्ते' की ओर से, 'खलासी-लाइन' की ओर से, 'टंच' की दिशा से, चौकी नं० २२ की ओर से, मोरगाह की ओर से बमों के फटने की आवाजें आ रही थीं और आस्मान की ओर उठते हुए धुएँ, हर घड़ी हर पल बढ़ते जा रहे थे, बढ़ते जा रहे थे।

किले की आधी छुट्टी का बिगुल बजा, पूरी छुट्टी का बिगुल बजा, और अब शाम हो गई थी। लेकिन न पंजू घर लौटा और न बसंता वापिस आया; लोगों ने हर प्रकार के अनुमान लगाने आरम्भ कर दिये, और जो कोई भी उठता वह इस बात पर झुँझलाता कि आखिर वे गए ही क्यों थे। जब चौधरी सोहणेशाह ने सबको बाहर निकलने से रोक दिया था, यदि वे एक दिन न जाते तो कौनसा मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ता। बसंते लीखल की माँ को मूर्च्छा-पर-मूर्च्छा आ रही थी और पंजू का पिता भाई 'बिल्ला' गुरुद्वारे के सामने गली में धरना देकर बैठ गया। गंजे टूटन के गिर्द बार-

बार अपने दूध ऐसे सफेद बालों को खींचता हुआ कहता—"बेटा तो बेटा गुरुद्वारे की कृपाण भी यूँ ही गँवा दी, यह तो गुरु के चरणों में रखी जाती थी!"

और लोग सोचते कि बड़े गुरुद्वारे का भाई कितना ईमानदार है!

ज्यों-ज्यों अँधेरा बढ़ता जाता, त्यों-त्यों बमों के फटने की आवाज अधिक स्पष्ट सुनाई देने लगती। चारों ओर आग सुलगती हुई दिखाई दे रही थी; सारी रात लोगों ने कोठों पर बैठे-बैठे काट दी। चौधरी अल्लादित्ता जबसे आया, मुसलमानों के मुहल्लों में जा घुसा था। वह लगभग आधी रात को लौटा, उसके चेहरे पर अब पहले-जैसी घबराहट नहीं थी—"और तो सब कुशलता है, किन्तु जो दो लड़के किले में काम पर गये हुए हैं, वे नहीं लौट सकेंगे!" चौधरी अल्लादित्ता ने सोहणेशाह के पास चारपाई पर बैठते हुए कहा।

और फिर दोनों मित्र बातों में उलझ गए। सोहणेशाह बार-बार कहता कि न जाने क्यों उसका साहस जवाब दे रहा है। जो आग चारों ओर भड़क चुकी थी, वह उनके गाँव को अपनी लपेट में लेने से क्यों रुकेगी। बातों-बातों में वह बार-बार अल्लादित्ता को विदाई-सन्देश देने लगता। नूरपुर के पीर की दरगाह में सोहणेशाह पिछले बीस वर्षों से जा रहा था, पाँच वर्ष अभी और उसने वहाँ जाना था, और फिर उसने चौधरी अल्लादित्ता से कहा कि वह प्रति वर्ष उर्स पर अवश्य उसकी ओर से हो आया करे। इस वर्ष जब कुतिया ने बच्चे दिये, तो उसने फकीरों के लड़के मीरु को वचन दिया था कि वह उसे एक बच्चा अवश्य देगा। एक बच्चा उसने चन्नो महरी के पति को देने का वचन दिया था, बेचारे दोनों पति-पत्नी बूढ़े खूसट हो चुके थे, और सूना दालान उन्हें काट खाने को दौड़ता था। फिर भट्टी के आगे बैठ-बैठकर चन्नो की नजर भी तो खराब हो गई थी, जब कभी उसका पति घर पर न होता, चील-कव्वे उसके बर्तनों में चोंच मारते रहते थे। और दो महीने बाद जब काली भैंस सूख जाए तो सोहणेशाह ने उसे जोड़ियों वाले आलम के घर पहुँचा देने के लिए कहा; आलम से बढ़कर ढोर-डंगरों की

और कोई सेवा नहीं कर सकता था। फिर सोहणेशाह ने चौधरी अल्लादित्ता को दाद के हटाने का मन्त्र बताया। ज्यों-ज्यों सोहणेशाह इस प्रकार की बातें करता, चौधरी अल्लादित्ता उससे लड़ता, उससे रुष्ट हो जाता।

लेकिन सोहणेशाह बेबस था, उसकी आँखों के आगे ऐसे बुरे दृश्य आते कि वह कांप-कांप उठता। वह सोचता कि चौधरी अल्लादित्ता ने तो कभी कोई अखबार नहीं पढ़ा था। उसने तो केवल इधर-उधर की बातें सुन रखी थीं। सोहणेशाह जानता था कि नवाखली में क्या हुआ था, और फिर बिहार में किस प्रकार खून की होली खेली गई थी, उसी लड़ी की एक कड़ी पोठोहार था।

छछ और धन्नी के लोगों को ईश्वर ऐसे अवसर दे, वे तो कुछ भी नहीं छोड़ेंगे। फिर चौधरी अल्लादित्ता ने तो स्वयं उसे बताया था कि हजारे की ओर से, मरदान की ओर से, पठानों से भरे हुए ट्रक आ रहे थे—कड़ियल जवान, राक्षसों-जैसे, जो शान्ति के दिनों में दिन-दहाड़े डाके डालते थे, और अब तो चारों ओर अँधेरगर्दी मची हुई थी।

और इस प्रकार सोच-सोचकर, कुढ़-कुढ़कर रात कट गई, डर के मारे कोई अपने पशु न खोलता। लोग जहाँ बैठते वहीं बैठे रह जाते, किसी में शक्ति नहीं रही थी। बड़े गुरुद्वारे के 'भाई' और बसंते लीखल की माँ की चीखों और फ़रियादों ने सारा गाँव सिर पर उठाया हुआ था और इधर फिर से किले का बिगुल बज रहा था; मजदूरों को काम के लिए बुला रहा था, मुन्शियों को निगरानी के लिए बुला रहा था, क्लर्कों को हिसाब-किताब के लिए पुकार रहा था, कारीगरों को तराश-खराश के लिए बुला रहा था।' कहते थे कि मुसलमान सिक्खों को मार रहे थे, मुसलमान हिन्दुओं को मार रहे थे, हिन्दू मुसलमानों को काट रहे थे, सिक्ख मुसलमानों पर तलवारें उठा रहे थे—गोरे और उनकी मेमें सामने खड़े उनका कौतुक देखते रहते, उनसे कोई कुछ नहीं कहता। और किले के सारे अफसर गोरे थे।

अभी कठिनता से धूप निकली थी कि शहर की ओर से साइकिल पर मुजफ्फर, इनामखोर का लड़का आया। उसने आकर बताया कि मार्ग में

दो लाशें पड़ी थीं, एक तो नदी के किनारे पर थी और दूसरी चांदमारी के समीप बूढ़े शीशम-तले पड़ी थी; दोनों सिक्खों की लाशें थीं।

यह सुनते ही स्त्रियों ने छाती पर दुहत्थड़ मार-मारकर बुरा हाल कर लिया। बसंते की माँ गलियों में एड़ियाँ रगड़ती, पंजू का पिता कुछ इस प्रकार बेसुध हुआ कि होश में ही न आता।

कुछ लोगों ने सुना कि शहर से सूबेदार आया है। लोग उसकी हवेली की ओर दौड़ पड़े कि कहीं मुजफ्फर को भ्रम न हुआ हो। फिर उसने लाशों को पहचाना थोड़ा ही था, वह तो कॉलेज का विद्यार्थी था—कल रात सिनेमा देखने के लिए शहर रुक गया था। और सूबेदार तेज़ी के साथ जीप पर आया और आते ही अपनी हवेली में चला गया। अन्दर जाते ही हवेली का बाहर का द्वार बन्द कर दिया गया; जिन्होंने सूबेदार की जीप देखी थी, कहते थे कि वह ट्रंकों से लदी हुई थी, और भी न जाने क्या कुछ उसमें भरा था।

कोई पौन घण्टे बाद चौधरी ने द्वार खुलवाया। सूबेदार के गले में पिस्तौल पड़ा था, उसके हाथ में एक राइफिल थी। उसके मुँह से शराब की दुर्गन्ध आ रही थी। उसके होंठ पान से रँगे हुए थे, जैसे लाम पर से आने के बाद वह कुछ वर्षों तक अपने होंठ इसी प्रकार पान से रँगा करता था।

चौधरी उसकी यह दशा देखकर वैसे ही लौट आया और उसने उससे कोई बात न की। लौटते हुए उसने सोचा कि वह जमादार जहाँदाद से पूछे कि सूबेदार ने यह क्या ढंग पकड़ा हुआ था, किन्तु चौधरी को मालूम हुआ कि जमादार जहाँदाद कल का शहर से नहीं लौटा था। जैलदार का लड़का भी कुछ दिन हुए, लाम पर से बेकार होकर घर आया था और पता करने पर मालूम हुआ कि वह भी घर में नहीं था। शरीफा लैंसनायक भी दो दिनों से घर नहीं आया था। चौधरी अल्लादित्ता घर-घर घूमकर थक-हार गया। क्या फ़ौजी, क्या अफ़सर, जितने लोग लाम पर से आए थे, उनमें से कोई भी अपने घर में नहीं था। न वे स्वयं घर में थे और न उनके हथि-

—यार घर में थे। कोई शहर कभी यूँ तो नहीं जाता कि अपनी बन्दूकें और पिस्तौलें भी साथ ले जाए।

"हो-न-हो—इन सबकी अक़्ल पर पर्दे पड़ गए हैं!"

चौधरी अल्लादित्ता मन-ही-मन में सोचने लगा और उसे ऐसा अनुभव हुआ, जैसे उसके सपनों का संसार उजड़ गया हो।

और चौधरी अल्लादित्ता के मुँह पर ताले पड़ गए। लोग लाख उसे बुलाने का प्रयत्न करें, किन्तु वह हैरान-परेशान किसी से बात न करता, फटी-फटी आँखों से घूरता, किन्तु मुँह से कोई बात न निकालता।

फिर करमूं मिरासी शहर से आया, उसके सिर पर कपड़े सीने की एक मशीन थी। वह कह रहा था कि यह सड़क के एक किनारे पड़ी थी, उसने उठाई तो उसे किसी ने रोका नहीं, वह उसे उठाकर चल पड़ा। फिर भी उसे किसी ने नहीं रोका, वह निर्दोष था। वह तो स्टेशन पर उतरा था, मार्ग में ऐसे ही मशीन पड़ी थी, वह उठा लाया। गाँव में दाखिल होते ही सीधा चौधरी सोहणेशाह के घर गया और पराई मशीन उसने गाँव के सर-पंच के घर जमा करा दी। उसने लाख-लाख सौगंधें उठाईं कि उसका तनिक भी दोष नहीं था।

जब करमूं ने यह कहा कि उसने मार्ग में कोई लाश नहीं देखी, तो सबको धैर्य मिला। किन्तु करमूं तो एक आँख से काना था और दूसरी आँख से भी उसे कम दिखाई देता था, उसकी बात पर किसी को विश्वास न आया और दूसरे क्षण लोगों ने यह सोचना आरम्भ कर दिया कि क्यों न बन्दूकें और तलवारें लेकर एक जत्था बनाकर जराही नदी और चांदमारी तक हो आए। लेकिन मुसलमान-पड़ोसी सिक्खों और हिन्दुओं को गाँव से एक कदम बाहर न रखने देते। आखिर निर्णय हुआ कि पाँच मुसलमान युवक साइकिलों पर जाएँ और इसकी खबर लाएँ।

पाँच नवयुवक कुछ इस प्रकार गए कि लौटकर न आए, दोपहर हो गई। दोपहर ढल गई—सायंकाल हो गया—मुसलमान कहें कि लड़के भी हाथ से गँवाए—सिक्ख कहें कि साइकिलें भी यूँ ही गँवाईं।

तंग आकर शाम को चौधरी सोहणेशाह ने फजलू चौकीदार को भेजा, लगभग एक घण्टे बाद वह पसीने में तर हाँपता हुआ पहुँचा, फूट-फूटकर रोता हुआ, सिर धुनता हुआ—"वही थे—बिल्कुल वही थे— बसंता और पंजू । एक जराही के तट पर पड़ा था और दूसरा चांदमारी के समीप बूढ़े शीशम-तले औंधे मुँह पड़ा था ।

और जब लोग बिखर गए, तो फ़जलू ने चौधरी सोहणेशाह को बताया कि पंजू के किस प्रकार तलवार से दो टुकड़े कर दिये गए थे । कन्धों से नीचे का उसका धड़ अलग पड़ा था । साथ के कुँए वालों ने बताया कि किस प्रकार 'टंच' के गुण्डों ने उसे उसी की तलवार से ही टुकड़े-टुकड़े कर दिया था । बसंते को छवियों से जैसे धुनककर रख दिया था, वह मसला हुआ, कुचला हुआ पड़ा था; दोनों लाशों पर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं । कुत्ते उन्हें आधा तो खा चुके थे, गिद्ध साथ वाले पेड़ पर जम कर बैठे हुए थे और वे बार-बार उन्हें आकर नोचना आरम्भ कर देते थे । बसन्ते को तो फजलू ने कपड़ों से पहचाना था और पंजू को कत्ल होता हुआ साथ के कुएँ वालों ने देखा था । दूसरों ने उसकी तलवार ही छीनकर उसे काट दिया था और उसकी तलवार भी उठाकर ले गए थे । उसका रोटीवाला डिब्बा भी ले दौड़े थे; बसन्ते के पास पाठ करने वाला उसका 'गुटका' अभी तक पड़ा था, जिसे फ़जलदाद उठाकर ले आया था । वह गुटका खून से लिथड़ा हुआ था ।

चौधरी चुपके से उठा और उसने दो चारपाइयाँ देकर आठ आदमी भेजे, ताकि लाशों को उठाकर ले आएँ । सोहणे शाह ने किसी और के साथ इसकी चर्चा न की ।

उस रात राजकर्णी को गले लगाकर चौधरी फूट-फूटकर रोया, हक्की-बक्की सतभराई कोठे पर खड़ी देखती रही, और जब सोने के समय वे दोनों इकट्ठी हुईं तो सतभराई के आँसू रुकने में न आये ।

और अभी कुछ अधिक समय नहीं बीता था कि छावनी की ओर से एक लारी आती हुई दिखाई दी । सब लोग कोठे पर खड़े होकर उसकी

प्रतीक्षा करने लगे, कोई कुछ सोचता और कोई कुछ ! लेकिन जब गाँव में वह लारी पहुँची, तो मुसलमानों के मुहल्लों में कुहराम मच गया। जो पाँच लड़के दिन को साइकिलों पर गए थे, लौटे नहीं थे। उनमें से एक की लाश लारी में लदी हुई थी। कोई कहता कि किसी सिक्ख ने उसे गोली मारी थी, कोई कहता कि किसी फौजी गोरे ने। बात यों हुई—लाशों को देखकर ये लड़के गाँव लौटने के बजाय छावनी चले गए। वहाँ गली-गली और बाजारों में लूटमार हो रही थी, आग लगाई जा रही थी। "अल्ला हो अकबर" के नारे लगाते यह भी लूटमार में शामिल हो गए। पता नहीं फिर कहाँ से एक गोली आई और दोस्त मुहम्मद के सीने में उतर गई। पच्चीस वर्ष का भरपूर नवयुवक देखते-ही-देखते तड़पता हुआ ठण्डा हो गया।

सारा गाँव टूटकर दोस्त मुहम्मद के घर पहुँच गया। क्या सिक्ख, क्या मुसलमान, सभी दोस्त मुहम्मद के गले लगकर रोते। अभी यह क्रन्दन जारी था कि सूबेदार ने उठकर बोलना आरम्भ कर दिया, "यह लड़का शहीद है। इसे किसी सिक्ख की गोली लगी है, मुसलमान इसका बदला सौ सिक्खों के सीनों को गोलियों से बेधकर लेंगे।" सूबेदार ने अभी तक शराब पी रखी थी, अभी तक पान खाया हुआ था। वह बोलता गया—बोलता गया—जब कभी वह अधिक जोश में आता। तो गले में पड़े हुए पिस्तौल पर हाथ रख देता।

आखिर जब सूबेदार ने बोलना बन्द किया, तो दालान में एक भी हिन्दू-सिक्ख शेष नहीं था। सूबेदार ने दोस्त मुहम्मद के लड़के को अपने शराब में भीगे हुए होंठों से चूम लिया। उसके पैरों पर अपने सिर से तुर्रेदार पगड़ी उतारकर रख दी और लाख-लाख सौगन्धें उठाकर प्रतिज्ञा ली कि उसका खून व्यर्थ नहीं जाने दिया जायगा।

और फिर "अल्ला हो अकबर" के नारों से, "पाकिस्तान जिन्दाबाद" के नारों से आस्मान जैसे फटने लगा।

६

रातभर मुसलमानों के मुहल्लों में नारे लगते रहे—"अल्ला-हो-अकबर" और "पाकिस्तान जिन्दाबाद" के नारे—!

अभी ये नारे ऊँचे हो ही रहे थे कि फजलू चौकीदार बसन्ते और पंजू की लाशें उठवाकर ले आया।

सहमे और डरे हुए हिन्दुओं और सिक्खों ने मुँह से आवाज न निकली, चुपके-से उन्होंने चारपाइयों को कंधा देकर पकड़ लिया और चुपके-से उन्होंने चारपाइयाँ बाजार में ला रक्खीं। बसन्ते लीखल की माँ की किसी ने चीख न निकलने दी। पंजू के पिता के होंठों पर किसी ने फ़रियाद न आने दी!

"पाकिस्तान जिन्दाबाद" के नारे और ऊँचे हो रहे थे, दो दिनों से सड़ती हुई लाशों की दुर्गन्ध उठ रही थी। गिद्धों की नोची हुई और कुत्तों की झँझोड़ी हुई लाशें धूल से अटी पड़ी थीं। बसन्ते की बाँह पर लिखा हुआ था—"भाई बसन्तसिंह जी"—और पंजू ने अपने सीने पर मेमों और

परियों के चित्र खुदवाए हुए थे। बसन्ते की बस वह भुजा बची हुई थी और पंजू के सीने का भी वही एक भाग बचा हुआ था।

चौधरी अल्लादित्ता और सोहणेशाह भी आखिर आ पहुँचे। सहमे हुए लोगों ने उन्हें मार्ग दे दिया; सोहणेशाह की आँखों में आँसू देखकर सभी दुहत्थड़ मारकर रोने लगे, उन्होंने फ़रियादें करनी आरम्भ कर दीं, जैसे कोई बन्ध टूट गया हो! बसन्ते की माँ दीवार पर सिर पटकने लगी, मिट्टी से मुट्ठी भर-भरकर अपने सिर में डालती, और पंजू का पिता पागल हो गया। बार-बार उसे कपड़े पहनाए जाते, किन्तु वह उन्हें फाड़कर चीथड़े-चीथड़े कर देता।

सोहणेशाह और अल्लादित्ता के कहने पर लाशों के जलाए जाने का प्रबन्ध किया गया। और लोगों ने सोचा कि सवेरे से पहले-पहले उन्हें यह काम खत्म कर लेना चाहिये, क्योंकि उसके बाद उन्हें दोस्त मुहम्मद के लड़के को भी दफ़नाने के लिये जाना था।

"अल्ला-हो-अकबर" और "पाकिस्तान जिन्दाबाद" के नारे सारी रात गूँजते रहे। हर नारे के बाद अल्लादित्ता दाँत पीसने लगता, अन्दर-ही-अन्दर बल खाता।

राजकर्णी और सतभराई बार-बार कोठे पर चारों ओर आग की लपटें उठती हुई देखने जातीं, और अपने-अपने हृदय में जलकर रह जातीं।

मासूम आँखों में लाखों प्रश्न लिखे हुए थे, मासूम चेहरों पर भयानक भय छाया हुआ था, आखिर चौधरी अल्लादित्ता ने उन्हें सब-कुछ सुना दिया।

चौधरी ने निर्णय किया था कि वह अपने गाँव पर कोई चोट नहीं पड़ने देगा। दोस्त मुहम्मद का लड़का अन्य चार लड़कों के साथ छावनी की दुकानें लूट रहा था कि किसी गोरे ने गोली चला दी। उसके खून का दोष सिक्खों पर लगाना अन्याय था। दोस्त मुहम्मद के लड़के को 'शहीद' कहना बहुत बड़ा जुल्म था, और चौधरी ने निर्णय किया था कि जब वे उसे दफ़नाने के लिये जाएँगे, तो वह उनके साथ नहीं जायेगा।

राजकर्णी और सतभराई जब सोचतीं कि दोस्त मुहम्मद का लड़का 'दीना' शहीद बन गया, तो उनका रक्त खौलने लगता। दीना, जिससे गाँव की प्रत्येक जवान लड़की को एक-न-एक शिकायत थी, वक्त-बेवक्त खाइयों में घूमता रहता, पेड़ों पर चढ़कर बैठा रहता। रक्खी तेलिन की बेटी से जब उसने एक दिन कुछ कहा था, तो वह फूट-फूटकर रोती हुई चौधरी अल्ला-दित्ता के पास शिकायत लेकर आई थी। दोस्त मुहम्मद का लड़का, जिसके माँ-बाप उसके हाथ जोड़ते रहे और उसने एक अक्षर भी नहीं पढ़ा था, स्कूल न स्वयं जाता था न अन्य लड़कों को जाने देता था। प्रत्येक पड़ोसी और प्रत्येक हमउम्र के साथ वह एक-न-एक बार झगड़ चुका था, लड़ चुका था। कई बार वह उन्हें पीट चुका था, वह बड़े-छोटे का भी लिहाज न करता। एक दोपहर को पुरियों का गुरुद्वारा खाली था कि उसने भीतर जाकर उसकी गुल्लक तोड़नी आरम्भ कर दी। यदि ऊपर से हीरो न आ जाती, तो उसने सारे रूमाल भी चुरा लिये होते, और सारे पैसे भी। और जब कोई उस चोरी की चर्चा करता, तो दीना और उसका पिता दोस्त मुहम्मद आगे से लड़ने को उतारू हो जाते।

वही 'दीना' आज शहीद बन गया था। उस दीने के बदले के लिये "अल्ला-हो-अकबर" के नारे लगाए जा रहे थे, ताकि उन नारों में शामिल होने वाला हर आदमी अपने शहीदों का बदला ले!

सोहणेशाह सोचता—बिल्कुल यूँ ही होगा, जैसे दूसरे गाँवों में हो रहा था। यह एक भ्रम-सा था, एक लज्जा-सी थी, जो किसी क्षण भी हट सकती थी; और उसके अन्दर की आवाज उठती—"अच्छा, जैसे तेरी इच्छा—" और वह सोचता—"यदि सारे हिन्दुओं और सिक्खों को मार कर, उन्हें अपने पाकिस्तान से निकालकर मुसलमान प्रसन्न हो जायेंगे, चैन से बसेंगे, तो वह निस्सन्देह ऐसा कर लें। और यदि इस फ़िसाद का परिणाम कुछ भी नहीं निकलना है और यदि निर्धनों को निर्धन ही रहना है, यदि किसानों को यूँ ही भूखों मरना है, तो फिर ऐसा क्यों हो रहा है?"

और अभी तो पाकिस्तान बना ही नहीं था, अभी तो शासन अँग्रेज के

हाथ में था—और एक दिन उसने कचहरी से लौटते हुए किसी को यह कहते सुना था कि यह सब कुछ अँग्रेज़ का किया-धरा था। अँग्रेज़ ही लड़वा रहा था, हिन्दुओं को मुसलमानों के साथ, मुसलमानों को सिक्खों के साथ !

बसन्ते और पंजू को जलाने के लिये सारा गाँव गया, रातों-रात लकड़ियाँ इकट्ठी की गईं, मिल-जुलकर सारा प्रबन्ध किया गया और चुपके-से जाकर उन्हें अग्नि की भेंट कर दिया गया। एक भी चीख़ न उठी, एक भी क़दम ज़ोर से न पटका गया।

और जब लपटें उठ रही थीं, दोनों चिताओं के पास बैठे हुए लोगों को चौधरी सोहणेशाह ने समझाना आरम्भ किया—

"आज हमारी परीक्षा का दिन है ! आज हमारे दो आदमी नहीं मारे गए, हम सब मर चुके हैं ! हम, जो न फ़रियाद कर सकते हैं, न उनका बदला ले सकते हैं···"

और इस प्रकार सोहणेशाह बोलता गया, बोलता गया। उसने लोगों को बताया कि चौधरी अल्लादित्ता बेबस था। उसकी कोई नही सुनता था; वह लोगों से सिर पटक-पटककर, लड़-झगड़कर उन्हें लज्जित कर-करके थक चुका था और अब बेबस होकर घर में बैठ गया था।

सोहणेशाह इस प्रकार देर तक बोलता रहा—अपनी बेबसी, अपनी मजबूरी के उसने इस प्रकार करुणाजनक दृश्य खींचे। और जब वह बैठा तो एक नवयुवक उठकर लोगों को ललकारने लगा ! निर्णय हुआ कि पंचायती गुरुद्वारे में इकट्ठे होकर लोग अपनी रक्षा के साधन ढूँढें।

लगभग एक घण्टे के पश्चात् गुरुद्वारे में बन्दूकों की सूची तैयार की गई। कारतूसों की गिनती की गई। यह देखा गया कि किस-किस के पास कृपाणें थीं और किस-किस को उनका प्रयोग आता था। छवियों वाले छवियाँ ले आए, गँडासों वाले गँडासे, लाठियों वाले लाठियाँ ले आए। लोगों ने नोकदार पत्थर जमा करके घर भर लिये—निर्णय किया गया कि सारा गाँव चौधरी सोहणेशाह के चौबारे पर इकट्ठा हो जाय। रातों-रात लोग अपने घरों को ताले लगाकर चौधरी सोहणेशाह के घर में पहुँच गए,

फ़र्शों पर दरियाँ बिछा दी गईं; राइफ़लों वाले अपने-अपने स्थान पर मोर्चा बाँधकर बैठ गए। प्रत्येक व्यक्ति ने अपनी-अपनी रक्षा के लिये कोई-न-कोई हथियार पकड़ा हुआ था।

मुसलमानों के मुहल्लों में नारे अभी तक लग रहे थे। दोस्त मुहम्मद के लड़के को अभी तक 'शहीद' पुकारा जा रहा था, और हर नारा शताब्दियों से साथ रहनेवाले हिन्दुओं और मुसलमानों को चीरकर अलग कर रहा था। 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे—जो हिन्दू-मुसलमान और सिक्ख-बालक मिलकर लगाया करते थे। आज ये नारे हिन्दुओं और सिक्खों को गालियों की तरह लग रहे थे, और चारों ओर जलते हुए गाँव, चीखते और पुकार करते हुए निर्बलों के क्रन्दन गूँज रहे थे।

आज फिर तीसरे दिन किले की वर्कशाप में सीटियाँ बजनी आरम्भ हो गईं, सोकर जागने की सीटी, नहाने-धोने की सीटी, रोटी खाने की सीटी, घर से निकलने की सीटी, आधा रास्ता करने की सीटी, वर्कशाप से बाहर पहुँचने की सीटी!

'धमियाल' के प्रत्येक घर में से एक-न-एक व्यक्ति अवश्य किले में नौकर था—"किला माई बाप है—" धमियाल के लड़के पढ़ते-पढ़ते सिसकने लगते, फिर फेल हो जाते; यदि माता-पिता अधिक तंग करते तो एक बार फिर फेल हो जाते। फिर तंग आकर कोई-न-कोई उन्हें किले में नौकर करवा देता। धमियाल के कई बाबू अब बड़े अफ़सर बन गए थे। जिनकी कलम चलने से प्रतिदिन कई व्यक्ति नौकर हो जाते और कई निकाले जाते। धमियाल-वासियों की एक शिकायत सदैव रहती थी कि जब कोई तनिक बड़ा होता, जब किसी का दो सौ से जरा अधिक वेतन हो जाता, तो बोरिया-बिस्तर उठाकर रावलपिंडी छावनी, तोपखाने, लालकुड़ती, खलासी लाइन या शहर जाकर रहने लगता।

अमीर-हिन्दू और अमीर-सिक्ख शायद ही कोई गाँव में होता, इसलिए मुसलमान-ज़मींदार शुरू से अपने-आपको राजा कहलवाते आए, और उनका दबदबा भी गाँव वालों पर कुछ कम नहीं था।

और अब जबकि मुसलमानों के मोहल्लों में 'अल्ला हो अकबर' के भड़काने वाले नारे लग रहे थे, हिन्दू और सिक्ख भय के मारे काँप-काँप जाते।

आखिर कुछ नवयुवकों ने तंग आकर सोचा कि नारों का जवाब नारों से दिया जाय, किन्तु चौधरी सोहणेशाह ने इस बात की बिल्कुल आज्ञा न दी—

"यदि ये दीवाने हो चुके हैं तो तुम तो पागल मत बनो।" बार-बार चौधरी सबको यह बात याद दिलाता।

उधर अपने बड़े कमरे में अल्लादित्ता सिजदे में गिरा हुआ था। दुआ कर रहा था कि खुदा उसे इस इम्तहान में पास करे, उसे भय था कि कहीं इस बूढ़ी उम्र में उसके मुँह पर कालिख न मल दी जाय, कहीं सारी उम्र के किये-कराए पर पानी न फिर जाए। उसे इस बात की रत्ती-भर चिन्ता नहीं थी कि उसकी अपनी बेटी का क्या बनेगा, उसका अपना क्या होगा। चौधरी अल्लादित्ता न मुसलमानों का पक्षपाती था न हिन्दुओं का। उसने मुसलमानों को कई बार काफ़र कहा था और हिन्दुओं और सिक्खों को विश्वास नहीं आता था कि वह उनका भी हो सकता था।

"खुदा मुझे हिम्मत दे!" बार-बार चौधरी अल्लादित्ता दुआ करता।

७

"आगए—आगए—आगए"—और इस बार वे सचमुच ही आ रहे थे।

पिछले तीन दिनों से खलबली मची हुई थी, चारों ओर दूर क्षितिज तक धूल उठती और फिर बिखर जाती। ढोल बजते-बजते धीमे पड़ जाते, शहनाइयाँ एक तान में सिमटकर दब जातीं।

किन्तु अब वे आ रहे थे। 'अली-अली' करते हुए आ रहे थे; तनूरों में ईंधन पड़े का पड़ा रह गया, तवों पर रोटियों की करवट तक न बदली गई, दूध में बिलोनियाँ रुक गईं।

सारा गाँव चौधरी सोहलेशाह के चौबारे पर इकट्ठा था। फिर चौधरी अल्लादित्ता लट्ठे की दूध ऐसी चादर बाँधे व्याकुलता से घूमने लगा। उसकी नौकरानियाँ चीनी के छेत्रे उठाए, दूध के पतीले उठाए, अपने पड़ोसियों के लिये लेकर आने लगीं।

सामने नदी के किनारे श्मशान में अभी तक चिताएँ सुलग रही थीं।

उन नवयुवकों की, जिन्हें छवियों से, गँडासों से किसी ने काटकर रख दिया था।

चारों ओर धुआँ उठ रहा था, रात को नजरें शोलों पर जमकर रह जातीं—और दूरबीन वाले बारी-बारी सारे इलाके के गाँवों के नाम ले चुके थे। जिस-जिस गाँव का नाम उनके होंठों पर आता, उस-उस गाँव के सम्बन्धी दुहत्थड़ मार-मारकर रोते। किसी की बेटी कहीं ब्याही हुई थी, किसी की माँ कहीं से ब्याही आई थी।

बूढ़ा नजरा नीचे गली में से गुजर रहा था—

"ए भाई नजरे!" ऊपर से एक खत्राणी ने आवाज दी—"खात की तुझे कोई खबर है?"—खात दूरबीन की सीमा से कहीं दूर था।

"भाबी, झाड़ू दे आया हूँ!" एक हाथ से नजरे ने अपनी काँटों के समान दाढ़ी को खुजलाते हुए ऊपर की ओर देखकर कहा।

...और खत्राणी का ऊपर का सांस ऊपर और नीचे का नीचे रह गया, खात गाँव में उसकी दो बेटियाँ थीं, उसकी एक ननद भी थी और उसकी बिरादरी भी सारी वहाँ भरी पड़ी थी।

'खात' को बरबाद करने में नजरा भी शामिल था। नजरा, जिसे कभी नदी में से गुजरना होता और यदि वहाँ स्त्रियाँ नहा रही होतीं और कपड़े धो रही होतीं, यह किनारे पर खड़ा होकर आवाज दिया करता—

"कौन हो तुम! यदि तुम अपने मोहल्ले वाली हो तो कुछ ओढ़ लो।"

और गाँव की स्त्रियाँ उसे लाख-लाख गालियाँ दिया करती थीं।

जिन स्त्रियों के गर्भ सात महीने से कुछ दिन ऊपर थे, वे सब माताएँ बन गईं। एक-एक दिन में तीन-तीन बच्चे उत्पन्न होते, चौबारे की सारी चारपाइयाँ स्त्रियाँ सँभाल चुकीं थी। एक चारपाई बूढ़े दारोगा के पास भी थी, उसे कोई नाराज नहीं कर सकता था, वह आठों पहर दुनाली बन्दूक सीने से लगाए रखता। आजकल उसके जोड़ों में दर्द भी उठता था। शहतीर ऐसी लम्बी और सरु-कद-पोठोहारनों के यहाँ आजकल बच्चे ठिगने, चूहे-बिल्लियों जैसे होते।

फ़िसादी कितने दिनों तक आते रहे, और टल जाते रहे, किन्तु आज सामने के गाँव में वे पहुँच चुके थे। गाँव के बाहर की ओर खालसा-स्कूल को आग लगा दी गई, ढोल पीटे गए, किन्तु अल्लादित्ता ने खत्रियों को रोके रक्खा—

अल्लादित्ता ने सोहणेशाह के साथ फिर पगड़ी बदली, उनके झुर्रियों से भरे हुए हाथ फिर उनकी श्वेत दाढ़ियों पर फिरते रहे।

और उधर सोहणेशाह की जवान लड़की राजकर्णी अल्लादित्ता की जवान बेटी सतभराई के गले से चिमटी रहती। चार आँखों में एक बाढ़-सी आ गई, दो सीनों में एक ही टीस, एक ही दर्द उठता। यदि भुजाएँ लहरातीं, तो एक ही तरह, आहें ओठों से निकलतीं तो एक ही जैसी।

मुसलमान चौधरी के घर एक ही बेटी थी, सिक्ख चौधरी के घर इकलौती बेटी थी और वे दोनों साथ खेलकर बड़ी हुई थीं, उनकी मैत्री गुड़ियों के खेल, खेल-खेल कर जवान हुई थी, उनकी मैत्री माहिया की तानों में पली थी, उनकी मैत्री एक ही से सपनों में दृढ़ हुई थी, और आज यह भोली-सी मैत्री तड़प-तड़प उठती।

अपनी अल्हड़ जवान बेटी की ओर सोहणेशाह देखता और सोचता—"यदि वे सचमुच आ गए तो?" और राजकर्णी अपने पिता की आँसुओं से भीगी आँखें देखकर अपनी चीखें न रोक सकती।

"यदि वे सचमुच आ गए तो?"—सतभराई सोचती—"मैं राजकर्णी के पहलू में बैठ जाऊँगी।" लेकिन अब तो वे आ चुके थे, किसी के रोके रुकने वाले नहीं थे, किसी के टाले टलने वाले नहीं थे, अब तो आ चुके थे।

चौधरी अल्लादित्ता! तू कराड़ों से मिल गया? कुछ तो सोच, तुझे लाज नहीं आती? मुसलमान भाई होकर तू 'सिक्खड़ों' की सहायता करता है, फ़िसादी अल्लादित्ता को लज्जित करते और उसे उकसाते।

और चौधरी अल्लादित्ता बार-बार सोचता कि बिहार में रहने वाले मुसलमान पोठोहार में रहने वाले मुसलमानों के अपने थे; और जिन पड़ोसियों के साथ वे हँस-खेलकर बड़े हुए थे, वे सहसा पराए हो गए थे।

किसी की वस्तु किसी से क्यों कर छीनी जा सकती है ? किसी को किसी दूसरे के दोष के लिए क्यों कर मारा जा सकता है ? चौधरी अल्लादित्ता की समझ में कुछ न आता। वह हैरान होता कि यदि खत्री वहाँ से चले जायँगे, तो मुसलमान अकेले कैसे जी सकेंगे ? किन्तु वह अकेला था—गाँव के दूसरे मुसलमान अपने-अपने कोठों में छिपे रहे, उन्हें लाख आवाजें दीं, उन्हें लाख उकसाया, किन्तु कोई भी बाहर न निकला। चौधरी अल्लादित्ता अकेला और उसके सामने 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारों का एक तूफ़ान उठा हुआ था। वह अकेला था और उसके सामने दस हजार तने हुए सीने थे।

अल्लादित्ता ने उन्हें समझाया, चौधरी अल्लादित्ता ने उन्हें धमकाया। बूढ़े अल्लादित्ता ने वास्ते दिये, किन्तु भीड़ जैसे बढ़ रही थी, भीड़ जैसे उभर रही थी, एक-एक करके दो-दो करके, टोलियों में, पंक्तियों में भीड़ उमड़ती रही, बिखरती रही, फैलती रही—और इस प्रकार बढ़ने लगी जैसे हवा में उड़ रही है।

खुदाबख्श, जिसने कई बार सोहणेशाह से पगड़ी बदली थी, फ़िसादियों का सरदार था, सबसे आगे खड़ा था। सैदन लुहार था, जो सोहणेशाह को सलाम करता नहीं थकता था। सोहणेशाह के अपने कई मुजारे नेजे उठाए, छवियाँ लिए उछल-उछल पड़ते।

"खुदाबख्श, अभी तो सोहणेशाह की तुझे दी हुई मेंहदी तेरी दाढ़ी में लगी है।" चौधरी अल्लादित्ता ने खुदाबख्श को लज्जित किया।

"वह पुराना सोहणेशाह भी मर गया और वह पुराना खुदाबख्श भी नहीं रहा चौधरी।" खुदाबख्श ने अकड़कर कहा—"हमें बिहार का बदला लेना है।"—सैदन लुहार ने तोते की तरह रटा हुआ वाक्य कहा। सैदन को इतना भी पता नहीं था कि 'गुज्जर खाँ' के आगे कौन-सा शहर था।

"हमें पाकिस्तान लेना है।"—घघरों के लड़के करमूँ ने कहा, करमूँ—जिसके मुँह में जीभ नहीं हुआ करती थी; जब से उसने होश सँभाला

था, ताँगा चला-चला कर उसका कचूमर निकला जा रहा था ।

चौधरी अल्लादित्ता सुनता रहा, सुनता रहा । आखिर उससे न रहा गया—"मेरे गाँव में यह ज़ुल्म और नाइन्साफी कभी नहीं होगी !" उसके अन्तिम शब्द भीड़ के कोलाहल में विलीन होगए, जैसे एक अथाह सागर में एक लहर । एक तिनके के समान चौधरी अल्लादित्ता की पगड़ी नेज़ों की बाढ़ में खो गई ।

८

खत्री गाजर-मूली के समान थोड़े ही काटे गए? जिस-जिसमें लड़ने की शक्ति थी वह अन्तिम श्वास तक लड़ा। जो लड़ नहीं सकते थे, या तो भाग गए या बाहर नदी में अथवा कोनों में दुबक गए, या गेहूँ के साथ घुन की भाँति पिस गए।

जब फ़िसादी गाँव पर टूट पड़े, तब सिक्खों और हिन्दुओं ने चौधरी का चौबारा छोड़ दिया और अपने एक-एक मोहल्ले को, अपने एक-एक घर को बचाने के लिये निकल पड़े। गलियों और दालानों में लाशों के ढेर लग गए।

बच्चों को नेज़ों पर उछाला गया, स्त्रियों को गँड़ासों से काटा गया, बूढ़ों को बालों और दाढ़ियों से पकड़कर घसीटा गया, जवान नवयुवकों को गोलियों से भून दिया गया।

ढोल पीटते और शहनाइयाँ फूँकते फ़िसादी बाजे-गाजे के साथ आए। बाहर की ओर खालसा-स्कूल को जलता हुआ छोड़कर जब वे आगे बढ़े,

तो चारों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती, नेजे और बन्दूकें ही दिखाई देतीं। जोड़ियों की ओर से जोड़ियाँ वाले आए, मोहड़े की ओर से मोहड़े वाले, टाली मूहरी की ओर से टाली मूहरी वाले आए; न जाने फ़िसादियों के चश्मे कहाँ-कहाँ से फूट पड़े। और जाबे की ओर से तो जैसे गुण्डे और बदमाश पहले ही से आकर इकट्ठे हो गए थे।

"अल्ला हो अकबर" और "पाकिस्तान जिन्दाबाद" के नारों से आकाश गूँज हो उठा। ज्यों-ज्यों ये नारे समीप आते, त्यों-त्यों गाँव के मुसलमानों के मोहल्लों में हलचल बढ़ती जाती। और जब फ़िसादी गाँव के बिल्कुल समीप पहुँच गए, तो बाहर के नारों का जवाब भीतर के नारों से दिया जाने लगा। फिर पड़ोसियों के देखते-देखते गाँव के लोग सूबेदार के नेतृत्व में हार लेकर सेवियों और बताशों के टोकरे लेकर फ़िसादियों से जा मिले।

चित्र देखे गए, सूचियाँ देखी गईं, किस-किसके पास हथियार थे। किसका घर कहाँ था, गाँव में जवान लड़कियाँ कितनी थीं, कितनी कुमारी थीं, कितनी विवाहिता थीं, कौन-कौन अख़बार पढ़ता था, कौन-कौन पाकिस्तान के विरुद्ध बातें करता था। किस-किस घर से क्या-क्या लूट का माल प्राप्त किया जा सकता है, सब बातों पर विचार किया जाता रहा। वे जिन्हें अवश्यमेव जान से मारना था, वे जिन्हें तरसा-तरसाकर मारना था, वे जिन्हें आग में झोंककर जलाना था, वे जिन्हें कुत्तों से नुचवाना था—युगों की शत्रुता का आज प्रतिशोध लिया गया। करमूँ के लड़के लक्खू ने एक बार शामे हलवाई की लड़की प्रीतो की ओर बुरी दृष्टि डाली थी, तो खत्रियों ने मार-मारकर उसका भुरकस निकाल दिया था। जो भी आता, पहले घूँसे और फिर थप्पड़ जमाता, फिर उसकी मुश्कें कसकर उसे छत से लटका दिया गया था। वह सारी रात चीख़ता रहा था, अगले दिन कुत्ते से उसका मुँह चटवाया गया था और फिर उसे घर की ओर भगा दिया गया था।

लक्खू, जिसने उस दिन से कभी खत्रियों के मोहल्ले को मुँह नहीं किया था, आज दमकती हुई छवी उठाए शामू के घर पर दृष्टि गड़ाये हुए था। और फिर जब आक्रमण हुआ तो वह अपनी टोली को लेकर सबसे

पहले उस घर पर टूट पड़ा। शामू को उन्होंने एक खम्भे से बाँध दिया, और उसकी पत्नी को एक दूसरे खम्भे से, और फिर प्रीतो को तथा उसकी पाँच अन्य बहनों को उनके अपने माता-पिता के सामने कुचलकर रख दिया। दूध-मलाई पर पली हुई शामू की सुन्दर बेटियाँ सिसक न सकीं, मुँह से कोई आवाज न निकाल सकीं। लहू में लिथड़े हुए छुरों के जोर से किसी को चौके में ही गिरा लिया गया। किसी को दालान ही में पटक दिया गया, कोई बेरी-तले औंधे मुँह जा गिरी। सबसे छोटी तेरह वर्ष की कोंपल ऐसी लड़की देहली पर पड़ी हुई अपनी माँ की ओर देखती रही, देखती रही और फिर ठण्डी होगई। सबसे छोटी, सबसे ताकतवर राक्षस के हाथ लगी और वह जहाँ दाँत काटता वहीं से खून निकल आता। जाते हुए लक्खू ने शामू और उसकी पत्नी की एक-एक भुजा, एक-एक टाँग काट दी, एक-एक करके उनकी आँख निकाल दी।

मोहल्लों-के-मोहल्ले जलाए जा रहे थे। तिड़-तिड़ करती हुई गोलियाँ बरस रही थीं। "अल्ला हो अकबर" और "पाकिस्तान जिन्दाबाद" के नारों से आकाश गूँज-गूँज उठता। फ़िसादी लाशों पर से फलांग रहे थे, लहू से लिथड़े हुए थे, और आक्रमण का निर्देशक खुदाबख्श बार-बार नेफ़े में अड़ी हुई शराब की बोतल निकालता और पीता जाता। उसकी आँखों की पुतलियाँ जैसे उछलकर आँखों से बाहर आ रहेंगी। ढोल पीटने की आवाज और ऊँची होगई। शहनाइयाँ एक ही साँस में बजाई जा रही थीं; खुदाबख्श का सफेद घोड़ा मचल-मचल जाता।

भिश्ती और कसाई का सारा परिवार नेजे और गँडासे उठाये हुए था, भिश्ती पागलों की भाँति हँसता और लोगों को पकड़-पकड़कर बताता—"मुझे तो आज पता चला कि औरत किसे कहते हैं, मुझे तो आज पता चला कि औरत को मारना कितना आसान है।"

कमाल अपने रंगीन स्वभाव के कारण सारे इलाके में प्रसिद्ध था, प्रतिवर्ष मुजरा करवाता और हर दूसरे वर्ष नई लड़की घर में डाल लेता। उसके पिता की इतनी सम्पत्ति थी कि पानी के समान बहाए जाने पर भी

समाप्त न होती; और अब जिस दिन से फ़िसाद आरम्भ हुए थे, शराब की बोतल उसके मुँह से अलग न होती। कबाब खाता, शराब पीता, पान की पीक थूकता, और 'ढल्ले' के चौधरी की बारह वर्षीया एक कली के समान कोमल लड़की के मेमों के समान बाल काटकर साथ लिये फिरता। दूध ऐसी गोरी लड़की, जिसकी बिल्ली की-सी आँखें थी, शराब में हँस-हँसकर ऐंठ-ऐंठकर उसके साथ चलती!

फिर खुदाबख्श को किसी ने आकर बताया कि फ़िसादी बीच के मोहल्ले में परस्पर लड़ पड़े थे। ऐनक लगाने वाली, साड़ी बाँधने वाली, अंग्रेजी में गिटमिट करने वाली स्कूल की उस्तानी को जो कोई भी देखता, अपनी ओर खींचता। इस प्रकार जोड़ां गाँव ,के लड़के मोहड़े गाँव के लड़कों से हाथापाई हो गए, झगड़ते हुए छवियाँ लेकर एक-दूसरे पर टूट पड़े, बीच में उस्तानी भी कट गई और दोनों पक्षों के आठ-दस व्यक्ति भी मारे गए।

खुदाबख्श के परामर्श के लिए एकहरे चोगे वाला पीर था, और एक फ़ौज में से छुट्टी पर आया हुआ सूबेदार था। पीर को बार-बार क्रोध आता और बार-बार अरबी भाषा में वह लोगों से भला-बुरा कहता। पीर की समझ में नहीं आ रहा था कि फ़िसादी स्त्रियों और बालकों को क्यों काट रहे थे। "खत्रियों की औरतें पाकिस्तान की जायदाद हैं!" बार-बार वह कहता—"बच्चे जिस घर में पलते हैं, उनका भी वही मजहब हो जाता है!" उसके पास ऊपर से यह आदेश आया था।

एक गली में 'जंड' की शाखा से एक सिक्ख नौजवान लटक रहा था, उसके साथ उसकी पत्नी अपने गज-गज-भर लम्बे बालों के साथ झूल रही थी और 'जंड' की जड़ पर उनका छः महीने का बच्चा कीलों से जड़ा हुआ था। कोई कहता कि स्त्री में अभी तक प्राण हैं, कोई कहता कि वे सब मर चुके थे। और पीर कहता—"अबे सुसरो! मैं किस मर्ज की दवा हूँ, इन सुसरी लड़कियों को तुम मेरे पास क्यों नहीं भेजते?" उसे यह आदेश मिला था कि स्त्रियों को साथ-साथ कलमा पढ़वाया जाए और साथ-साथ उनके

निकाह किये जायँ, ताकि बाद में कोई झगड़ा न उठे। इस्लाम में चार-चार पत्नियों की तो रसूले-पाक ने भी आज्ञा दे रखी थी। और पोठोहार के मुसलमान थे कि उन्हें एक-एक भी प्राप्त नहीं थी। खुदा ने उन्हें यह अवसर दिया था कि सारे घर आबाद हो जाएँ, सब चूल्हों में आग जलने लगे। पीर सोचता—आखिर इस हिन्दुओं के मुल्क में इस्लाम इसी तरह फैलाया जा सकता था। और अब तो उन्होंने पाकिस्तान बनाना था, खत्राणियाँ अक्सर साफ़-साफ़ सुथरे और गोरे बच्चे जनती थीं, पाकिस्तान में ऐसे व्यक्तियों की भी आवश्यकता थी, और फिर खत्राणियों के बच्चे पढ़ने-लिखने में भी बड़े तीव्र होते थे।

खुदाबख्श का फ़ौजी सहायक बार-बार झुंझला उठता। चारों ओर लाशों के ढेर देखकर वह सोचता—इस प्रकार अवश्य कोई बीमारी फूट पड़ेगी। अभी तो फ़िसादियों ने 'टंच' गाँव को लूटना था और फिर खलासी लाइन पर आक्रमण करना था। सारा रावलपिंडी शहर इन्हीं के आधीन था, और यदि वे एक बार यहाँ से निकल गए तो पीछे लाशें गल-सड़कर सारा वातावरण दूषित कर देंगी।

"ये सिक्ख पाकिस्तान के वैरी यहाँ मरकर भी अपना बदला लेते रहेंगे!" बार-बार खुदाबख्श को वह कहता।

फिर उसने एक बहुत बड़ा अलाव जलवाया, और सब लाशों को उसमें फेंक दिया। फ़िसादी सोचते—यदि जान से मारने के पश्चात् उन्हें दोबारा आग में फेंकने की आवश्यकता पड़ती है, तो क्यों न उन्हें जीवित जला दिया जाए। खत्रियों ने तो मरना ही था, उनके लिए क्या अन्तर पड़ता—और बूढ़े खूसट हठीले, जो 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' नहीं कहते थे, वे बच्चे जिनके माता-पिता आत्महत्या कर गए थे, पत्नियाँ जिनके पतियों ने लड़ने का प्रयास किया था और जो कलमा पढ़ने से इन्कार कर रही थीं, सबको जीवित ही अलाव में फेंक दिया गया।

फत्तू लुहार जब दित्ते की पत्नी को, जो बालों में तोता-मैना बनाया करती थी और धोबी के धुले दूध-ऐसे सफेद कपड़े पहनती थी, गोद में

उठाए बाहर दालान में लाया तो उसने उसके मुँह पर थूक दिया। फत्तू को यह न समझ आए कि वह उसके साथ करे तो क्या करें, वह उसे उठाए हुए आग में फेंकने लगा। किन्तु सूबेदार भी, खुदाबख्श भी और वह पीर भी उसके पीछे पंजे झाड़कर पड़ गए।

"ओ फत्तू! बदज़ात, यह तो बड़े काम की बीवी बनेगी। अबे यह तो दस और बच्चे पैदा करेगी, क्यों इसे यूँ ही हाथ से गँवाता है?"

और जब वे फत्तू के समीप आए, तो दित्ते की परी ऐसी पत्नी ने तीनों के मुँह पर बारी-बारी से थूक दिया। वह थूकती जाए और वे सब-के-सब हैरान हक्के-बक्के उसके मुँह की ओर देखते जाएँ।

क्रोध में आकर सूबेदार ने उस स्त्री के अंग-अंग का कीमा कर दिया, बन्द-बन्द नोच लिया। हरे चोगे वाला पीर हैरान होता—मजाल है जो बालों में तोता-मैना बनाने वाली फूल-ऐसी दित्ते की पत्नी ने आह भी की हो।

यूँ तो हर गली, हर मुहल्ले और हर घर में खत्री एक-न-एक चोट लगाकर मारे, किन्तु सबसे कड़ी टक्कर पुरियों के मुहल्ले में ली गई। जैवन्त चाहे फ़ौज में छः महीने ही रहा था, किन्तु अपने मुहल्ले की रक्षा का प्रबन्ध उसने खूब किया। पाँच मोर्चों पर उसने राइफलों वाले बिठा दिये थे और पाँच मोर्चों पर पत्थरों वाले। दोनों ओर से रात-भर गोली चलती रही, दिन-भर गोली चलती रही और फिर रात हो चुकी थी। दोनों ओर से शूँकती हुई गोलियाँ आतीं, किन्तु अन्त में खत्रियों का बारूद समाप्त हो गया। जब बड़े गुरुद्वारे के मोर्चे पर फ़िसादी टूट पड़े, तो जैवन्त ने अपनी आँखों से देखा कि किस प्रकार मोर्चे में उनके तीन नौजवान बर्छों से छलनी होगए और नेज़ों से उछाल दिये गए।

अगला मोर्चा—दसवें गुरु के जोड़ों की जगह पर था और जैवन्त को विश्वास था कि जब फ़िसादियों ने उस घर में पाँव रक्खा, वे अन्धे हो जायँगे। बचपन से वह कहानियाँ सुनता आ रहा था कि डाकू गुरु के जोड़े चुराने के लिए आए और अन्धे होगए। आज जैवन्त देख रहा था—

देख रहा था कि फिसादी दौड़ते-भागते हुए उस मोर्चे तक जा पहुँचे। और फिर बिल्कुल वही हुआ, जो पहले मोर्चे पर हुआ था।

तीसरे मोर्चे पर सुन्दर सुनार और उसकी पत्नी थी, और जब उनकी बारी आई, तो कमर में दुपट्टा बाँधकर चमकती हुई तलवारें पकड़े हुए पति-पत्नी स्वयं गली में आगए और सुन्दर की पत्नी ने कड़ककर फिसादियों को ललकारा कि वे बहुत थे और ये केवल दो! वे उनसे आमने-सामने लड़कर चाहे उन्हें मौत की नींद सुला दें, लेकिन गोली न चलाएँ! और इतना कहकर पति-पत्नी दोनो पीठ-से-पीठ जोड़कर फिसादियों पर टूट पड़े। कोई उनके पास न फटकता; कितनी देर से गतके के दाँव सीखते हुए सुन्दर और उसकी पत्नी ने फिसादियों के छक्के छुड़ाए और उनके देखते-देखते गली से बाहर जा निकले। यह देखकर फिसादियों ने पत्थर मारने आरम्भ कर दिये, और पत्थर मार-मारकर सुन्दर और उसकी पत्नी को वहीं ढेर कर दिया। वे पत्थरों के नीचे दब गए, किन्तु फिर भी कोई फिसादी उनके समीप न जाता।

जैवन्त के मोर्चे की बारी जब आई, तो उसके पास नोकदार पत्थर थे। यूँ लक्ष्य बनाकर पत्थर मारता कि लोग उसकी ओर मुँह न उठा सकते। आखिर झुँझलाकर फिसादियों ने उसके घर को आग लगा दी।

जैवन्त का मकान जलाकर सबको यूँ अनुभव हुआ कि सारा गाँव समाप्त हो चुका था।

खुदाबख्श ने अपनी कँटीली दाढ़ी पर हाथ फेरा। मेंहदी से रंगा हुआ एक बाल उसके हाथ में आ गया, उसी मेंहदी से रंगा हुआ जो चौधरी सोहणेशाह नें उस दिन विशेषरूप से उसे लाकर दी थी। और खुदाबख्श सोचने लगा कि चौधरी संभवतः पहले हल्ले ही में मारा गया था।

६

कमाल खाँ सोचता कि उसका काम सबसे, कठिन था। लड़ने वाले लड़कर, मार कर, आग लगाकर आगे चल पड़ते थे, और उसे पीछे से गाँव सँभालना पड़ता था; सुनसान दालान उसे काट खाने को दौड़ते। कहीं खून में उसके पाँव खुभ जाते, कहीं जलते हुए मकानों से उसे आँच आती। लेकिन आज ढल्ले के चौधरी की लड़की बंसी उसका मन बहला रही थी। छावनी की मेमों के समान बंसी को उसने एक पतलून पहना दी और उसके कटे हुए नर्म-नर्म बाल उसके कन्धों पर नाच-नाच उठते। यदि स्वयं शराब की आधी बोतल पीता, तो एक घूँट उसे भी पिला देता।

बंसी शराब के नशे में चूर मेमों के समान पतलून की जेबों में हाथ डालकर चलती, जिस प्रकार कमाल ने उसे सिखला रक्खा था। वह मोहल्लों के मकानों को जलता हुआ देखकर मुस्कराती, गलियों में बच्चों के उल्टे टँगे हुए धड़ देखकर हँसती, लाशों की छातियों पर चढ़कर खड़ी हो जाती और कमाल के क़द-से-क़द मिलाने लगती।

कमाल अभी सोच ही रहा था कि किस प्रकार लूट का माल सँभाल कर पड़ोसी गाँव की मस्जिदों में पहुँचाए कि उसके साथी लड़के जो उसकी सहायता के लिए पीछे रह जाते थे, शोर मचाते हुए सामने की गली में घुस गए और आन-की-आन में एक सिक्ख युवक को पकड़ लाए।

"आज इस ग़रीब से कुछ न कहना, यह तो 'अमरीका' है सुसरा, गुरदास का बेटा, यह तो पागल है, इसे क्या समझ कि......"

और कमाल खाँ ने अमरीके को छुड़ा लिया, वरना लड़के तो उसकी बोटी-बोटी उड़ाने लगे थे!

अमरीका बाल बिखराए, काँख में पगड़ी दबाए, मुँह खोले, फटी-फटी आँखों से चारों ओर देखता और मुस्कराता कि यह क्या हो रहा था, और फिर पायजामे के एक पांयचे को उठाते हुए कमाल खाँ की ओर आया और सलाम करते हुए बोला—"राजा जी, क्या आज दीवाली है या लोहड़ी?" फिर वह स्वयं भी हँस पड़ा और अन्य लोग भी हँस दिये।

जितने समय तक वे ट्रकों में सामान भरते रहे, छकड़े लादते रहे, ऊँटों को लादते रहे, अमरीका गली-गली घूमता रहा। कभी कमाल खाँ के लड़कों की सहायता करता, कभी उठाई हुई वस्तु को जोर से धरती पर पटक देता और हँसने लगता। कमाल खाँ के कारिन्दे उसे लाख-लाख गन्दी गालियाँ बकते।

कमाल खाँ यों प्रतीक्षा करता हुआ गली-गली और घर-घर घूम रहा था कि एक जगह एक बाजू पर उसकी दृष्टि पड़ी। उर्दू के शब्दों में उस बाजू पर खुदा हुआ था—"अल्लादित्ता खाँ"—चौधरी अल्लादित्ता खाँ, इलाके में सबसे अधिक लोकप्रिय अल्लादित्ता खाँ!!! कमाल खाँ का जी चाहा कि वह उस बाजू के टुकड़े को उठा ले, किन्तु जब बाजू के उस टुकड़े को उठाने के लिए उसने हाथ बढ़ाया, तो उसे ऐसे अनुभव हुआ जैसे वह बाजू साँप बन गया हो और उसे डसने के लिए उछल रहा हो। चौंककर वह पीछे हट गया—और फिर वह चौधरी अल्लादित्ता के घर की ओर गया। चौधरी सोहणे-शाह की हवेली भी जल चुकी थी, चौधरी अल्लादित्ता की हवेली भी जल

चुकी थी। पिंजरे राख बने पड़े थे—लाड़-चाव से पले हुए तोते, बुलबुलें, विलायती चिड़ियाँ झुलसीं पड़ीं थीं। गौएँ जल चुकी थीं, घोड़ियाँ फूली पड़ीं थीं, और चौधरी अल्लादित्ता का प्रसिद्ध शिकारी कुत्ता मोती सामने एक टूटी-फूटी छत पर बैठा 'च्याऊँ, च्याऊँ कर रहा था।

'अल्ला हो अकबर' 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे साथ की गली में अभी तक लग रहे थे। जब कोई भी भारी सन्दूक उठाना होता, तो कमाल खाँ के कारिन्दे नारे बुलन्द करते और 'अली-अली' करते हुए भारी-से-भारी वस्तु उठाकर दौड़ पड़ते।

कमाल खाँ ने सोचा इन दोनों चौधरियों की हवेलियों के भीतर अपरिमित माल होगा, उनकी जवान लड़कियों का दहेज गिना नहीं जा सकेगा, किन्तु वे जवान बेटियाँ कहाँ थीं? दो परियाँ, जिनके रूप की धूम सारे प्रदेश में थी।

और कमाल खाँ सोचता—चौधरी अल्लादित्ता ने यह क्या किया। आखिर कमाल खाँ के भी खत्री-मित्र थे, लेकिन इस्लाम खतरे में था। जब पाकिस्तान बन रहा था, जब अंग्रेज की पराधीनता और हिन्दू की गुलामी से छुटकारा मिल रहा था और जब ऊपर से आदेश आया था कि किसी हिन्दू और सिक्ख को जीवित न रहने दिया जाय, जब सबसे बड़ी मस्जिद के पीर ने आदेश दे दिया था कि कोई काफिर जीवित न बचें और उनकी सम्पत्ति जलाकर खाक कर दी जाय, तो फिर शेष क्या रह गया था—और फिर बिहार में बिल्कुल इसी प्रकार हिन्दुओं ने किया था; बिल्कुल यूँ ही गाँव-के-गाँव जला दिए गए थे, बिल्कुल यूँ ही पड़ोसियों को नोचा गया था, बिल्कुल यूँ ही स्त्रियों का सतीत्व नष्ट किया गया था। कमाल खाँ सोचता भी जाता और एक हाथ से छल्ले के चौधरी की बेटी, बिल्ली ऐसी आँखों वाली वंसी के गोरे-गोरे गालों से भी खेलता जाता।

दो पत्तर अनारां दे
सड़ गई जिन्दगी

...लग गए ढेर अँगारा दे।[1]

—बंसी गुनगुना रही !—

कमाल खाँ ने झुँझलाकर अपने नेफे में से शराब की बोतल निकाली और उसे एक ही साँस में पानी की भाँति पी गया। फिर उसने बंसी को एक घूँट पिलाया—पिछले कितने दिनों से शराब के एक-एक घूँट पीती हुई बंसी को अब शराब न कड़वी लगती थी न बुरी लगती थी। अब तो जब कभी कमाल के मुँह से शराब की दुर्गंध आती हुई अनुभव होती, तो उसे कुछ-कुछ अच्छी-सी लगती। उसकी आँखें मुँद-मुँद जातीं; उसका सिर झूलने लगता।

ट्रक कई चक्कर काट चुके, किन्तु 'धमियाल' के खत्रियों का सामान समाप्त होने में ही न आता था। अभी मोटा-मोटा सामान तो फिसादी आक्रमण के समय भी लूटते रहे थे; किन्तु उन्हें तो शीघ्रता होती थी, उन्हें तो अभी और बहुत से काम पूर्ण करने थे। दिल्ली समाचार पहुँचने से पूर्व उन्होंने सारे प्रदेश की सफाई करनी थी; यहाँ की पुलिस तो उनकी अपनी थी, यहाँ की पुलिस ने तो उन्हें बारूद इकट्ठा करके दिया था, हथियार मँगवाकर दिये थे, इलाके का बटवारा किया था कि कौन-कौन लोग कौन-कौन से गाँव को लूटें।

गाँव के मुसलमानों की यह इच्छा थी कि जब 'पुरियों' का मोहल्ला जल चुके, तो मलबे को इधर-उधर कर दिया जाय और फिर जगह को समतल करके उस पर हल चलाया जाए। क्योंकि यह मोहल्ला—मुसलमान मोहल्ले के साथ लगता था और पटवारी उनका अपना था—उसकी क्या मजाल थी कि वह भाइयों का कहा न माने !

कमाल खाँ को क्या विरोध हो सकता था। वह तो बस इतना ही चाहता

---

१. "अनारों के दो पत्ते...
यह जीवन जल गया
अँगारों के ढेर लग गए !"

था कि गाँव वाले उसको लूट का माल समेट लेने दें और जो दो-चार मुस-लमान शहीद हो गए थे, उन्हें दफ़ना लेने दें—फिर चाहे वे सारा गाँव सँभाल लें!

"मैं तो अपनी मेम के साथ छावनी का कोई बँगला हथिया लूँगा!" कमाल खाँ यह कहता और बंसी के लटकते हुए सँवरे बालों के साथ खेलने लगता।

अमरीका—फ़िसादियों की बड़ी सहायता कर रहा था। वह उन्हें अपने दादे के घर पकड़-पकड़कर ले गया! और वे जब ऊपर आए, तो वह एक ट्रंक को पकड़कर बैठ गया। लोहे के उस सन्दूक का जब ताला तोड़ा गया, तो भीतर नोटों की गड्डियों-की-गड्डियाँ जलकर राख हुई पड़ी थीं। फिर एक और सन्दूक का ताला तोड़ा गया—अभी उन्होंने सन्दूक का ढक्कन उठाया ही था कि भक् करके कपड़ों में आग लग गई। उनके देखते-देखते रेशमी-जोड़े, तिल्ले-जरी और गोटे की चादरें जलकर भस्म होगईं। फिर अमरीका फ़िसादियों को एक कोने में ले गया—एक फ़ुट धरती उन्होंने खोदी, तो उसमें से आभूषणों से भरपूर एक पिटारा निकला। फ़िसादियों ने अमरीके को कन्धों पर उठा लिया—"अमरीका जिन्दाबाद!" "अमरीका जिन्दाबाद" "पाकिस्तान जिन्दाबाद" "अल्ला-हो-अकबर" के नारे लगते रहे। अमरीके के दादे के पास पाँच सेर सोना था—

कन्धों पर अमरीके को उठाकर फ़िसादी उसे प्रसन्न कर रहे थे, कि उसे 'मिरगी' का दौरा पड़ गया। उसके मुँह से झाग निकलने लगी और वह मलबे के ढेर पर धम से गिर पड़ा, कितनी देर तक वहीं साँप की तरह विष घोलता रहा।

कोई डेढ़ घण्टे बाद कमाल खाँ ने देखा, तो हिचकियाँ लेता हुआ अमरीका फिर आ रहा था। एक लाश की पगड़ी उतारकर उसने सिर पर बाँधी हुई थी, एक लाश का उसने कोट पहना हुआ था। एक और लाश के उसने बूट पहने हुए थे—

"मैं भी चलूँगा, मैं भी चलूँगा!" बार-बार अपने बूटों की ओर

देखता हुआ अमरीका कमाल खाँ से सट कर खड़ा होने का प्रयत्न करता। जब ट्रक चला जाता तो उसका दिल बैठ जाता—

कुछ फ़िसादी कहने लगे कि अमरीके को अवश्य मुसलमान बना लेंगे, कमाल खाँ उन्हें लाख-लाख गालियाँ देता। कमालखाँ ने अमरीके का उन्माद देखा हुआ था, अपने घरवालों के लिये हर घड़ी एक नई समस्या खड़ी कर देता। एक बार छुरा लेकर अपने सोते हुए दादा को कत्ल करने लगा था, अचानक उसकी दादी की आँख खुल गई। उसने शोर मचा दिया और अमरीका वहाँ से भाग गया।

···लेकिन कुछ फ़िसादी हठ कर रहे थे। वे कहते थे कि अमरीके ने उनकी बड़ी सहायता की थी, एक बार वह कलमा पढ़कर सीधा स्वर्ग जाएगा। और जब उनका काम समाप्त हुआ, तो फ़िसादियों में जो एक नाई था, उसने अमरीके के केश और दाढ़ी काट दी। फ़िसादियों में एक सैयद था, उसने उसे कलमा पढ़ाया, और अमरीका जो सात वर्षों से सिक्ख-पागल था अब मुसलमान-पागल बन गया। और जब फ़िसादी उसे गले से लगा रहे थे, तो अमरीका चुपके-से उनके कपड़ों के साथ अपनी नाक पोंछ रहा था।

दाढ़ी और बालों के बिना अमरीका बंसी को बहुत भला लगा और जब सारे गाँव की सफ़ाई कर चुकने के उपरान्त कमाल खाँ ट्रक में बैठने लागा, तो उन्होंने अमरीके को भी साथ बिठा लिया।

सब गाँव जलकर भस्म बन चुका था; कहीं-कहीं से तनिक-सा धुआँ उठ रहा था या मलबे के अपने-आप गिरने की आवाज़ गूँज उठती थी। पड़ोसी, पास वाले गाँवों को लूटने के लिये गए हुए थे, उनकी पत्नियाँ अन्दर घरों में दुबकी पड़ी थीं। वे सब अभी तक हैरान थीं कि यह हो क्या रहा था, अपनी आँखों पर किसी को विश्वास नहीं आ रहा था।

सड़क पर एक हिन्दू की लाश के पास से गुजरते हुए अमरीके ने बाहर झुककर कहा—"बन्दगी बाबू जी!"

और कमाल खाँ ने सोचा कि सारे प्रदेश के मुसलमान हिन्दुओं और

सिक्खों को सदैव "बन्दगी" कहा करते थे। अमीर-हिन्दुओं और अमीर-सिक्खों ने मुसलमानों से सदा पराधीनों का-सा बर्ताव किया था, लुहार थे तो मुसलमान, बढ़ई थे तो मुसलमान, नाई थे तो मुसलमान, मजदूर थे तो मुसलमान; किन्तु हिन्दू और सिक्ख दुकानदार थे, जमीनें खरीदते थे, दफ़्तरों में अफ़सरी किया करते थे।

और अब···कमाल खाँ सोचता—ये सभी काम मुसलमान भाई किया करेंगे। मुसलमान ही अब अमीर होंगे, मुसलमान ही अब निर्धन होंगे, मुसलमान ही साहूकार होंगे, मुसलमान ही गुमाश्ते होंगे। मुसमलमान ही जमींदार होंगे और मुसलमान ही मजदूर होंगे। मुसलमान ही अफ़सरी करेंगे और मुसलमान ही चपरासी होंगे—और कोई किसी से 'बन्दगी' नहीं किया करेगा।

सब एक-दूसरे से "अस्सलामालेकुम" किया करेंगे और आगे से "वाल्लेकुम सलाम" का उत्तर सुना करेंगे।

और उसी रात को सोने से पहले शराब के नशे में कमला खाँ कितनी देर तक 'बंसी' को सलामालेकुम कहना सिखलाता रहा; और इस प्रकार बातें करते हुए दोनों बेसुध होकर सो गए।

लगभग आध घण्टे बाद अमरीका उस कमरे में चुपके-से प्रविष्ट हुआ। पहले तो उसने कबाबों की प्लेट खाली की और फिर गिलास भरकर शराब पी, फिर तीन-चार पान उठाकर खा गया। और फिर जब नशे में गट हो गया, तो धीरे-धीरे बंसी को कमाल खाँ के भुजपाश में से उठा के बाहर ले आया। रात घुप अँधेरी थी, दालान में एक बेरी से रस्सी वह पहले ही लटका आया था। जब उसके गले में रस्सी लपेटकर अमरीका गाँठ लगा रहा था, तो लड़की सोते में कुछ कुड़ कुड़ाई।

"न बहन, सोई रहो!" अमरीके ने बंसी को थपककर कहा—

अगले दिन बेरी से लटकी हुई बंसी ठंडी पड़ी थी, बिल्कुल सर्द पड़ चुकी थी। कमाल खाँ अमरीके को ढूँढता रहा, किन्तु वह कहीं दिखाई न दिया।

१०

जिस प्रकार चौधरी अल्लादित्ता खान ने प्रदेश के नम्बरदारों की बैठक में कुछ दिन पहले सबको डाँट दिलाई थी, रावलपिंडी से और न जाने कहाँ से आए हुए पीरों को जिस प्रकार धिक्कारा था, जिस प्रकार उसने इस्लाम की सौगन्ध दिये जाने पर सुनी-अनसुनी कर दी थी, जिस प्रकार उसने पाकिस्तान के लिये कोई बलिदान देने से इन्कार कर दिया था; उस पर जितने भी लोग वहाँ उपस्थित थे—उनकी सम्मति में चौधरी अल्लादित्ता खाँ उतना ही उनका वैरी था जितना कि कोई हिन्दू या कोई सिक्ख—और जब उसकी मुश्कें कसके कुछ बदमाशों ने उसे एक कोठड़ी में डाल दिया, तो पीरों ने मिल-जुलकर यह आदेश दिया कि ऐसे गद्दारों का, जो काफिरों की सहायता करें, नामोनिशाँ मिटा दिया जाय। उस दिन से जब भी चौधरी अल्लादित्ता की चर्चा आती, सब मुसलमान उसे बुरे शब्दों में याद करते।

फिर जब धमियाल पर आक्रमण हुआ, तो चौधरी अल्लादित्ता का नाम भी हिन्दुओं और सिक्खों की सूची में था, उसकी सम्पत्ति का अनुमान भी

लगा लिया गया था, उसके हथियारों की संख्या भी लगा ली गई थी। उसके घर को भी आग लगाई जानी थी, उसकी घोड़ियों को भी। अल्लादित्ता खाँ की बेटी की भी वही दशा होनी थी, जिसका चौधरी सोहणेशाह की बेटी राजकर्णी के बारे में सोचा गया था।

फिर भी इलाके के लोग सोचते कि किसी को साहस नहीं होगा चौधरी सोहणे शाह या चौधरी अल्लादित्ता खाँ से आँख मिला सकने का और पचास पठानों को यह कार्य सौंपा गया कि वे दोनों चौधरियों की हवेलियों पर अधिकार जमा लें।

और फिर जब चौधरी अल्लादित्ता खाँ फिसादियों के तूफ़ान में टुकड़े-टुकड़े हो गया, जब चौधरी सोहणे शाह के घर को छोड़कर प्रत्येक हिन्दू-सिक्ख जब चप्पे-चप्पे के लिये कट मरने लगा। जब भागने वाले भाग खड़े हुए और मरने वाले मर रहे थे, जब गोलियों की बौछाड़ हो रही थी और नारों पर नारे लगा रहे थे, जब चीत्कार उठ रहे थे और फरियादें कान चीर रही थीं—जब चारों ओर कोहराम मचा हुआ था, दो आदमी मुँडासा बाँधे आए और चौधरी सोहणे शाह और उसके पास खड़ी सतभराई को उठाकर खेतों की ओर नदी के पास ले गए।

दूर—बहुत दूर—खाई में पड़े हुए सोहणे शाह और सतभराई बार-बार "राजकर्णी-राजकर्णी" "अल्लादित्ता खाँ अल्लादित्ता खाँ" करते हुए बेसुध हो-हो जाते।

दो दिन सतभराई और सोहणे शाह एक-दूसरे के सीने से चिपटे हुए पड़े रहे। तीसरे दिन अभी मुँह-अँधेरा ही था कि चौधरी ईश्वर का नाम लेकर उठा, सतभराई उठी—ठोकरें खाते हुए सामने की सड़क पर हो लिये।

अभी उन्होंने कठिनता से सड़क पर पाँव रक्खे थे कि पीछे से एक मिलिट्री की लारी उनके पास आ खड़ी हुई; इसमें गोरखा सिपाही थे। एक सिक्ख और उसके साथ एक नौजवान लड़की को देखकर उन्होंने तत्काल उन्हें अपने साथ बिठा लिया। बन्दूकें तान कर खेतों में ट्रक घुमाते हुए बन्दे-बन्दे की ओर से पुनः 'धमियाल' की ओर आ निकले।

धमियाल जल चुका था। धमियाल के ऊँचे मीनारों वाले चौबारे औंधे पड़े थे। गिरी दीवारों पर कव्वे बैठे हुए थे, ऊपर गिद्ध मँडला रहे थे, मन्दिरों के कलश मिट चुके थे, गुरुद्वारों का चिह्नमात्र कहीं मिलता ही नहीं था। खालसा स्कूल का भवन जलकर भस्म हो चुका था, सरकारी स्कूल के द्वार और खिड़कियाँ लोग उखाड़कर ले गए थे।

मुसलमानों के मोहल्लों के बाहर 'नजरा' एक छकड़े पर मेज-कुर्सियाँ और शीशे की अल्मारियाँ लाद रहा था। गोरखे फौजी ने पल-भर के लिये ट्रक रोककर बाहर झाँका—

"यह कहाँ ले जा रहा है?" फौजी अफसर ने पूछा—

नजरे ने गोरखा-अफसर को भी मुसलमान समझते हुए कहा—"यह थानेदार का हिस्सा है।"

फिर न जाने उनके जी में क्या आया उन्होंने ट्रक चला दिया! सतभराई दूर तक देखती रही, नजरा छोटी-छोटी वस्तुएँ लाकर छकड़े पर लादता रहा।

सतभराई सोचती—नजरा उसे और राजकर्णी को बेर गिरा-गिराकर दिया करता था। नजरा, जो नदी के किनारे पर खड़ा होकर आवाज दिया करता था—"तुम कौन हो? जो तुम अपने मोहल्ले की हो तो कुछ ओढ़ लो।" और नीचे कपड़े धोती हुई स्त्रियाँ नजरे को लाख-लाख गालियाँ दिया करतीं थीं।

जब से लारी धमियाल के पास से आई थी, सोहणे शाह उसी समय से बेसुध पड़ा था—सतभराई का ध्यान फिर उस की ओर आकर्षित हो गया। कभी उसके तलुए मलती, कभी सिर दबाती। कभी उसे चच्चा-चच्चा कहकर पुकारती—

सोहणे शाह तो बस बहाने की खोज में रहता था। जो कुछ उसने देखा था, जो कुछ उसने सुना था, जिस प्रकार उसने चौधरी अल्लादित्ता खाँ को नेजे पर उछलते देखा था और जिस घड़ी राजकर्णी उससे अलग हुई थी। उन सब बातों की याद आते ही बार-बार उसकी आँखों-तले अँधेरा

आ जाता।

सतभराई सोचती—नजरे से वह अपने अब्बा के सम्बन्ध में पूछ लेती राजकर्णी के बारे में पूछ लेती। वह कल्पना भी नहीं कर सकती थी कि कोई चौधरी अल्लादित्ता खाँ को इस प्रकार कत्ल कर सकता था जिस प्रकार वह मारा गया। उसकी ओर तो कभी किसी ने आँख उठाकर नहीं देखा था, उसकी स्पष्टता और उसकी सत्यता के कारण सभी उसकी इज्जत करते थे। भाई-भाई का झगड़ा, पति-पत्नी के झगड़े, धरती-सम्बन्धी झगड़े, पशुओं के झगड़े—जब इनका कोई निर्णय न हो पाता था, तो चौधरी अल्लादित्ता ही उन्हें निबटाया करता था और इसका इतना दबदबा था कि कोई आगे से सिर नहीं उठा सकता।

राजकर्णी सम्भवतः पहले ही वहाँ पहुँच चुकी होगी जहाँ वे जा रहे थे। सतभराई ने कहानियाँ सुन रक्खी थीं कि जब भगदड़ मचा करती थी तो लोग एक स्थान से दूसरे स्थान को दौड़ जाया करते थे। नादिरशाह के काल में, उसके पहले और फिर उससे भी पहले कई बार पंजाब में इस प्रकार की भगदड़ मची थी। एक बार की बात है, लोग चर्चा किया करते थे—

खादा पीपा लाहे दा।
बाकी ऐहमद शाहे दा!

राजकर्णी की दादी, जब वे दोनों नन्हीं थीं तो उन्हें बताया करती थी—किस प्रकार जो कुछ भी किसी के पास होता, लोग उसे लूट लेते थे। सिक्ख-लड़कियाँ भी पर्दा किया करती थीं और घूँघट निकाल कर बाहर जाया करती थीं।

सतभराई सोचती—वे मुँडेरे जिन पर बैठकर कभी-कभी तारे निकल आया करते थे, वे दालान जिनमें खड़ी-खड़ी वे बड़ी हो गई थीं वे जगह जिनमें हँस-हँसकर बातें कर-करके उनका अंग-अंग दुखने लगता था, धरेकों

जो कुछ खाया-पिया है वही बस अपना है,
शेष सब ऐहमद शाह का है—

की वह घनी छाया जिनसे लाखों स्मृतियाँ जुड़ी हुई थी, वह नदी जो उल्टी बहती थी किन्तु फिर भी कितनी प्यारी, लाखों लोगों की पर्दादारी किया करती, जिसके चप्पे-चप्पे पर कई नाटक खेले गए, वह जो लाखों के भेद अपने सीने में छिपाये हुए थी, शीतल-शीतल 'पुरियों' के कुँए का जल, जमाले के खेत का मैदान, स्कूल वाली चक्की, तकिये की खानकाह, मान्टं का बाग, तेली मोहल्ले और शाही—लेकिन सब उससे दूर हो चुके थे। और वह यहाँ अब कभी लौटकर नहीं आ सकेगी—

और लारी दौड़ती जा रही थी।

मार्ग में उन्हें जो भी छकड़ा मिलता, सामान से लदा हुआ होता। तीव्र-गति से चलते हुए बैल—बैल जैसे सामान लादने वालों से भी अधिक बेचैन हों। कुछ के उपरान्त—जराही का पुल पार करके सम्मों वाली चढ़ाई चढ़ कर जब 'टंच' के चौक में वे पहुँचे जहाँ भेड़-बकरियों की मण्डी लगा करती थी—सतभराई ने क्या देखा कि मार्ग के दोनों ओर खेतों में वृक्षों तले, सड़क के किनारे और नालियों में लाशें-ही-लाशें पड़ी थीं। क्या सड़क, क्या खेत, सारी जगह रक्त से सनी पड़ी थी।

दस कदम आगे चाँदमारी के समीप जब वे पहुँचे, तो सतभराई को बन्दूकों के चलने की आवाज सुनाई दी, सिपाहियों को यहाँ गोली चलाना और लक्ष्य बाँधना सिखाया जाता था, और कुछ फौजी यूँ दिखाई दे रहे थे जैसे इस अभ्यास में बहुत संलग्न हों।

सोहणेशाह को अब होश आ रहा था। पहले उसने आँखें खोलीं फिर उसने पानी माँगा, फिर उसने उठकर सतभराई को गले से लगा लिया। सोहणे शाह के होंठ बार-बार कँपकँपाने लगते, किन्तु उसके मुँह से कोई आवाज़ न निकली। उसकी दूध ऐसी श्वेत दाढ़ी बिखर-बिखर जाती, उसके हाथ भर लम्बे-लम्बे बाल नीचे हुए और नीरस जान पड़ते। सतभराई की स्मृति में सोहणे शाह ने कभी मैले कपड़े नहीं पहने थे, आज मिट्टी और कीचड़ से लिथड़े हुए कपड़ों में छिपा हुआ था। सोहणे शाह के पाँव नंगे थे, उसकी जूती न जाने कब और पता नहीं कहाँ गिर पड़ी थी। सोहणे शाह

के चेहरे पर दमकती हुई लाली विलीन हो चुकी थी, वह अस्थियों का का कंकाल रह गया था। सोहणे शाह के गले में चौधरी होने का दुपट्टा आज पहली बार सतभराई को दिखाई नहीं दे रहा था। सोहणे शाह के हाथ काँपने लग जाते, फिर खुद ही बन्द हो जाते। वह फटी-फटी आँखों से आकाश की ओर देखने का प्रयास करता, उसकी आँखों में आँसू उछलते किन्तु पलकों पर ही रुक जाते।

सतभराई सोचती—वह फौजियों से पूछे कि वे कहाँ जा रहे थे, किन्तु उनकी भाषा ही और थी, उनका रंग-ढंग ही अलग था—सतभराई को बार-बार ध्यान आता कि ये पराए मनुष्य किस प्रकार उनके हमदर्द बन गए थे, किन्तु सारी आयु इकट्ठे रहने वाले, खाने वाले और इकट्ठा हँसने-खेलने वाले पड़ोसी किस प्रकार एक-दूसरे के दुश्मन बन गए थे।

मन-ही-मन में सोहणे शाह सोचता कि यदि इन सब बातों का परिणाम अच्छा हुआ, यदि इन सुसरों का पाकिस्तान किसी काम का बन जाए तो वह ईश्वर को धन्यवाद देगा और प्रत्येक कष्ट को सहन कर लेगा। फिर वह सोचता—वह पाकिस्तान भला कैसा होगा जिसकी नींवों में अल्लादित्ता खां ऐसे देवताओं का खून भरा हो, जिसके निर्माण में लाखों बच्चों को अनाथ किया जा रहा है। गुरुद्वारों और मन्दिरों को धूल में मिला करके कैसी मस्जिदें उभारी जायँगी। पाकिस्तान के कैसे नागरिक होंगे? ये लोग जो नेज़े उठाये, बर्छे उठाए, छवियाँ उठाए, बन्दूकें ताने गली-गली घूम रहे थे, गाँव-गाँव बरबाद कर रहे थे, किस प्रकार इनके लहू से सने हुए हाथ दोबारा पवित्र होंगे। उनके मुँह से लगा हुआ खून कैसे धुल सकेगा, यह लूट का माल ये लोग कितनी देर तक खायँगे? उसके बाद क्या करेंगे? फिर सोहणेशाह को कई लोकगीत याद आए, जिनमें हिन्दुओं और सिक्खों के साथ-साथ मुसलमानों की भी चर्चा आती थी। विवाहों के गीत, विरह के गीत, मिलन-गीत, इन गीतों को याद कर-करके सोहणेशाह बार-बार सोचता कि क्या इन गीतों में से हिन्दुओं और सिक्खों के नाम निकाल दिये जायँगे। गाँव की पाठशाला का अध्यापक सदैव हिन्दू हुआ करता था, सरपंच हमेशा

सिक्ख हुआ करते थे, नम्बरदार मुसलमान हुआ करते थे, अब वे परस्पर लड़-लड़कर मर जायँगे। एक बार जिनका हाथ खुल जाए, वे फिर कैसे रुक सकते थे। और सोहणे शाह की आँखें फटी-की-फटी रह जातीं!

यूँ अपने-आप सोहणेशाह चिन्ता के सागर में निमग्न था, यूँ सत-भराई अपने-आप दुःख की लहरों पर बही जा रही थी कि मिलिट्री की लारी उन्हें एक नए खुले हुए शरणार्थी कैंप में ले आई।

दूसरा भाग

११

मार्च का महीना था, सर्दियाँ कुछ बीत चुकीं थीं और कुछ रही थीं। खुले मैदान में जहाँ उन्हें लाकर उतारा गया था, तेज हवा आदमी को जैसे धकेलकर परे फेंकती। सरकार के व्यक्ति अभी तक खेमे लगा रहे थे, अभी खूँटे ठोंके जा रहे थे, अभी रस्से बाँधे जा रहे थे, अभी शामियाने खुल रहे थे; कंटीली बाड़ अभी चारों ओर बिखेरी जा रही थी। बन्दूकें ताने हुए पहरेदार प्रत्येक द्वार और प्रत्येक मोड़ पर खड़े थे।

मैदान के झाड़झंखा, टीले और खाइयाँ, पत्थर और कंकर अभी वैसे-के-वैसे थे। मैदान में हर प्रकार की घास, नुकीली झाड़ियाँ; कोहर अभी तक साफ़ नहीं किये गए थे। कहीं-कहीं ऐसा जान पड़ता था कि यहाँ हल चलाने का व्यर्थ प्रयत्न किया गया था। हल की बनाई हुई मेंड़े वैसी-की-वैसी जम चुकी थीं, पथरा गई थीं।

रावलपिंडी छावनी के हवाई अड्डे के साथ कितनी ही धरती बंजर पड़ी थी, उसके कुछ हिस्से को अलग करके सरकार ने शरणार्थी-कैंप बना दिया।

शरणार्थियों से भरी हुई लारियाँ, भूसे से लदे हुए छकड़े और मुर्ग़ों से खचाखच भरे हुए डब्बों के समान आतीं। बन्दूकें ताने हुए सिपाही गिन करके बन्दूकें ताने हुए सिपाहियों को देते, हस्ताक्षर लेते और चले जाते। लोग लारियों की छतों पर बैठे हुए होते, इंजनों पर चढ़े हुए होते, मड-गाडों से चिमटे हुए होते; और लारियों के भीतर पुरुषों को पुरुष, स्त्रियों को स्त्रियें और बालकों को बालक पाँव-तले रौंद रहे थे। लारी के भीतर तिल रखने को स्थान न होता।

लारी जब दरवाजे में से गुजरती, तो सारा कैंप उस पर टूटकर गिरता। लारियों से उतरते ही लोग कुहराम मचा देते। कभी खात, कभी सागरी, कभी दुमेरन, कभी चकरी, कभी चौंतरा, कभी किरपा, कभी चराह, कभी किसी अन्य गाँव के लोग कैंप में लाए जाते। प्रत्येक गाँव वाले के दूसरे गाँव में सम्बन्धी अवश्य होते थे, लोग दुहत्थड़ मार-मारकर गले लगते, चीखते रोते और आकाश सिर पर उठा लेते। स्त्रियाँ विलाप करतीं और छातियाँ पीटती हुई थक जातीं; लोग बच्चों के समान फूट-फूटकर रोते, धरती पर लोटते, बच्चों की-सी चीखें मार-मारकर दहाड़ें मारते, उनकी घिग्गी बँध जाती, गले बैठ जाते।

कई लोग दो-दो दिनों के प्यासे थे। कई तीन-तीन दिनों के भूखे थे। भय के मारे लोगों के रंग बदल गए थे। घरबार लुटाकर, सम्बन्धियों को क़त्ल होता हुआ देख-देखकर, तड़प-तड़पकर; बिलबिला-बिलबिलाकर, प्रार्थनाएँ कर-कर, माथे रगड़-रगड़कर लोगों के रूपरंग और-के-और हो गए थे।

यदि कोई भाई आया था तो बहनों का जोड़ा खोकर, यदि कोई बहन आई थी, तो भाइयों को गोलियों से छलनी छोड़कर, यदि कोई माँ पहुँची थी तो उसके बच्चों का पिता छुरियों और नेजों से टुकड़े-टुकड़े कर दिया गया था, यदि कोई पिता पहुँचा था तो अपने सारे परिवार को अग्नि की भेंट कर आया था।

लोग चीथड़ों से ढके हुए थे, फ़ूसड़े पहने हुए थे। बड़े-बड़े चौधरी पगड़ियों के बिना आए थे। उनके केश बिखरे हुए थे, उनमें चुल्लू-चुल्लू भर मिट्टी पड़ी हुई

थी। नवयुवतियाँ आई थीं, वे जिन्हें सात परदों में छिपाकर रखा जाता था, पाँव से नंगी थीं। सिर पर उनके हाथ-भर का दुपट्टा था—जिनके कुर्तों में उनकी नग्नता नहीं ढाँपी जाती थी। कहीं भी कोई नवयुवक दिखाई नहीं देता था। कोई भी हिन्दू, सिक्ख नौजवान नहीं बचा था, इलाका नौजवानों से खाली हो गया था। अपनी बहनों, अपनी माताओं और अपने गुरुद्वारों की रक्षा करते हुए पोठोहार का प्रत्येक नौजवान टुकड़े-टुकड़े हो चुका था। प्रत्येक सिर जिसमें रत्ती-भर भी गौरव था कट चुका था।

और इस कैंप में वे लोग आ रहे थे, जिन्हें फ़िसादी मार नहीं सकते थे। जिनकी बारी जब आई, तो नेज़ों और गंडासों की धार मुड़ गई। छुरियाँ इन्कार कर गईं—जिन्हें फौजी लारियों ने जाने कहाँ से जाकर चुन लिया था, जिन्होंने खाइयों में, झाड़ियों में, और कोनों में छिपकर अपनी प्राण-रक्षा की थी।

लोग आए थे भरपूर हवेलियों को छोड़कर, लोग आए थे आसमान से से बातें करने वाले भवनों को अग्नि की लपटों में छोड़कर, लोग आए थे रक्त में डूबी हुई गलियों को पार करके, लोग आए थे लाशों को लताड़कर, सड़ती हुई गलियों और सुलगते हुए गाँवों की आँच में से तैरकर—

रात, दिन—और फिर एक रात! एक और दिन!! कैम्प में आदमी ही-आदमी दिखाई देने लगे—आदमी और आए, थके हुए, हारे हुए, लुटे हुए, सहमे हुए, वे लोग जो बन्दूक की गोलियों की बौछार में से गुजरकर आए थे, नेज़ों और छुरियों की छाया में से गुज़रकर आए थे।

फिर सरकारी-कर्मचारियों ने अनुभव किया कि कैम्प को बढ़ाना पड़ेगा, या फिर कहीं एक और कैम्प खोलना पड़ेगा।

और फिर रावलपिंडी के साहूकार आने लगे, रोटियों से मोटरें भरके लाते, मिठाइयों से लारियाँ लादकर लाते। चादरें, कम्बल, जूतियाँ, कपड़े, रजाइयाँ, दूध, फल, दवाएँ—जो कुछ भी किसी के व्यर्थ पड़ा होता, ताँगों पर, गाड़ियों पर जिस प्रकार भी सम्भव होता, वहाँ पहुँचा देता। कॉलिजों और स्कूलों के स्वयंसेवक लड़के प्रत्येक वस्तु बाँटने लगे और

देखते-ही-देखते वहाँ एक गाँव-सा आबाद हो गया।

पुरुषों के पढ़ने के लिये सामाचारपत्र दिये गए, स्त्रियों को बर्तन दिये गए, बच्चों को खिलौने दिये गए, किन्तु आहें, क्रन्दन, फ़रियादें और आँसुओं की नदियाँ अभी तक चारों ओर जारी थीं। बैठे-बैठे किसी स्त्री की चीख़ निकल जाती, अच्छा-भला खड़ा कोई बूढ़ा किसी बालक को छाती से लगाकर सिसकने लग जाता। लोग बैठे हुए सारा-सारा दिन जले फफोले फोड़ते रहते।

कैम्प में एक तम्बू के भीतर "गुरू ग्रन्थसाहब" का पाठ प्रारम्भ हो गया, कैम्प में एक तम्बू के भीतर मन्दिर की मूर्तियाँ सुसज्जित होगईं। किन्तु उस ओर जाने को किसी का मन न मानता, घण्टियाँ बजतीं, शंख फूँके जाते—दोनों समय पुजारी और भाई, लोगों की प्रतीक्षा करते-करते थक जाते, किन्तु उनके शिविरों की ओर कोई न जाता। लोग ईश्वर को पहचान गए थे—उसे परख चुके थे। लोगों ने ईश्वर के गुरुद्वारों को देख लिया था, लोगों ने मन्दिरों की मूर्तियों का अपमान होते हुए देख लिया था। परमात्मा के मन्दिरों को लुटता हुआ, बर्बाद होता हुआ लोग देख चुके थे। गुरू के गुरुद्वारों के भीतर निरीह प्राणियों का मारा जाना, स्त्रियों का सतीत्व भंग किया जाना, ये सब कुछ लोग देख चुके थे। गुरुद्वारों को आग उसी प्रकार लगी थी, जैसे ब्लैक मार्केट करने वाले दुकानदारों की दुकानों को—ईश्वर लोगों की सहायता के लिये नहीं आया था, जब वे हाथ जोड़-जोड़कर थक गए थे। वह विधवा—जिसका एक-एक बच्चा उसकी दृष्टि के सामने नेज़ों पर उछाला गया तो उसकी कोई फ़रियाद उसे नहीं बचा सकी थी। वह बूढ़ा जिसके सामने उसके सात बेटे मारे गए थे और जिसके माथे पर अभी तक मूर्तियों के सामने सिर रगड़ने के निशान थे, फिर वे लोग जिनके सम्बन्धी पवित्र-ग्रन्थों को सीने से चिपकाए हुए थे और जिन्हें जीवित ही आग में फेंक दिया गया था, उन लोगों को ईश्वर पराया-पराया बेगाना-बेगाना अनुभव हो रहा था।

सरकार ने नल्के लगवाए थे, स्त्रियों के लिये अलग, पुरुषों के लिये

अलग। किन्तु उस पानी से केवल पीने का काम लिया जाता। न स्त्रियाँ नहातीं, न पुरुष नहाते—न बच्चों के शरीरों पर कभी पानी गिराया गया था, स्वयंसेवक प्रत्येक तम्बू में साबुन लाकर बाँट जाते, किन्तु कोई कभी नये कपड़े पहनने की परवा न करता।

जहाँ कोई बैठता, वहीं बैठा-बैठा दिन व्यतीत कर देता, कहीं कोई शिकायतें कर रहा होता, कहीं कोई सिर नवा कर चिन्ता में खोया रहता। स्त्रियाँ बार-बार बच्चों पर क्रुद्ध होतीं, क्रुद्ध होकर अपने बच्चों को फिर छाती से लगा लेतीं।

लोगों की सारी-सारी रात बैठे-बैठे और करवटें बदलते-बदलते बीत जाती। धरती पर लेटे हुए किसी को नींद न आती; जो सो जाते, उन्हें ऐसे बुरे सपने आते कि बार-बार चीखने लग पड़ते। दिन को भी लोगों की आँखों के सामने जलती हुई हवेलियाँ, चीखते हुए बच्चे, फ़रियाद करती हुई स्त्रियाँ, उल्टे टंगे हुए नवयुवक चित्र बन-बनकर आ जाते।

फिर एक लारी आई और उसकी छत पर से छलाँग लगाकर अमरीका हँसता हुआ नीचे आ रहा। आगे-पीछे खड़े होकर हर किसी को हँस-हँसकर 'सत श्री अकाल' कह रहा था, कई लोग अमरीके को जानते थे। कई लोगों ने उसके पागलपन के बारे में सुन रक्खा था, अमरीके ने हाथ में एक डंडा पकड़ा हुआ था जिसे उसने बन्दूक की भाँति कन्धे पर रखकर शरणार्थी कैम्प का पहरा देना आरम्भ कर दिया। थोड़ी-थोड़ी देर बाद "लैफ़्ट राईट" "लैफ़्ट राईट" करता जाता और ऐंठ-ऐंठकर चलने लगता।

अमरीका ही पागल नहीं था, शरणार्थी कैम्प में कई लोग अमरीके की तरह बौराए हुए रहते। जिस काम में लग जाते, उसी में मग्न हो जाते। जहाँ बैठते, वहीं बैठे-बैठे दिन गुज़ार देते। ज़रा-ज़रा सी बात पर अविश्वास प्रकट करते। बहुतों ने तो हकलाना आरम्भ कर दिया था, बहुतों की आँखें भैंगी हो गई थीं, बहुतों के हाथ-पाँव हर समय काँपते रहते, बहुत-से कानों से बहरे होगए, बहुतों की पाचन-शक्ति दुर्बल पड़ गई—जो कुछ खाते बाहर उगल देते।

डॉक्टर इलाज के लिए घूमते रहते, किन्तु कोई रोगी उनके समीप न फटकता। जो लोग दवा जाकर ले आते तो उसे छिपा-छिपाकर फेंक देते।

बहुतों के सम्बन्धी जो रावलपिंडी में रहते थे, उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर अपने साथ ले जाते। बहुतों के बहन-भाई और अन्य, जहाजों में सवार होकर आए और अपनों को उस कैम्प से निकालकर ले गए। किन्तु बहुत लोग ऐसे भी थे जिनका कोई और नहीं बचा था।

फिर यह बात प्रसिद्ध होगई कि मास्टर तारासिंह आ रहे हैं। फिर यह बात प्रसिद्ध हुई कि पण्डित जवाहरलाल नेहरू आ रहे हैं, फिर यह प्रसिद्ध हुआ कि सरदार पटेल आ रहे हैं। कोई भी नेता आता, किन्तु शरणार्थियों के चेहरों पर मुर्दनी देखकर आँख न उठा सकता। शरणार्थियों के हृदयों में वहशत देखकर देश के नेताओं की गर्दन न उठ सकती। जैसे वे आए, वैसे ही लौट गए।

"आप आज देहली के सिंहासन पर विराजमान हैं?" एक शरणार्थी नारी ने एक नेता को पुकार कर कहा—"आप ही आजकल राज्य कर रहे हैं? आप का ही नाम अखबारों में छपता है न? मैं क्या बताऊँ? मेरी ही आँखों के सामने मेरी लड़की से बलात्कार किया गया? आपकी हकूमत कहाँ सो रही है? मैं कहती हूँ मुझे मरवा क्यों नहीं डालते? कौन-सा मुँह लेकर किसी के पास जाऊँ? मैं अपनी इकलौती लड़की एक गाय के समान डकराती हुई छोड़ आई हूँ!"

नेता हाथ जोड़े खड़ा था, वह सिर झुकाए हुए था, उसकी आँखों से जैसे टप-टप आँसुओं की वर्षा हो रही थी।

"मैं कहती हूँ—" शरणार्थी नारी अभी तक बोल रही थी—"मैं कहती हूँ कि मुझे मेरी लड़की ला दो, मुझे कहीं से मेरी अपनी जाई ला दो!"

१२

लोग धीरे-धीरे कैम्पों में से खिसकने लगे। जहाँ-जहाँ किसी के सींग समाए, वहाँ-वहाँ चले गए, लेकिन फिर भी हजारों ऐसे थे जिनका इस संसार में कहीं और ठिकाना न था, जिनका कोई अपना नहीं बचा था जिसकी समवेदना वे पा सकते।

ऐसे लोग कैम्पों में इस प्रकार रहने लगे, जैसे वे सदा से उन्ही कैम्पों में रहते चले आ रहे हो, जैसे वे सदा के लिये यहीं रहेंगे।

जैसे-जैसे समय बीतता गया, लोगों ने आपस में कहानियाँ सुनानी आरम्भ कीं—अत्याचारों के वे नाटक, जो उनकी आँखों के सामने खेले गए। प्रत्येक अपने पड़ोसी की गाथा बड़े ध्यान से सुनता।

राजासिंह तो दिसम्बर सन् १९४६ से शरणार्थी बना हुआ था, अब उसे फिर बर्बाद होना पड़ा था। उस समय वह 'हजारे' के एक गाँव में रहा करता था। एक दिन एक सिक्ख-युवक और एक सिक्ख लड़की को पठानों ने मार डाला; गाँव के लोग घबरा गए किन्तु वे चुप रहे। फिर पता

चला कि पठान छिपे-छिपे छुरे तेज़ कर रहे थे, ढोलों की रस्सियाँ कस रहे थे, बाहर के गाँवों से गठजोड़ कर रहे थे—और राजासिंह हिन्दू-सिक्खों के कहे अनुसार दस मील दूर थाने में रिपोर्ट करने के लिये गया। शाम हो रही थी जब वह घर से निकला, जब वह आधी रात को थाने में पहुँचा तो कोई उसकी फ़रियाद सुनने को तैयार न हुआ। रात-भर राजासिंह अनुनय-विनय करता रहा किन्तु किसी ने पर्चा न लिखा और सवेरे उसे धक्के देकर बाहर निकाल दिया गया।

थका-हारा वह घर को लौट रहा था कि उसने एक पहाड़ी पर से गुजरते हुए देखा—उसके गाँव से धुआँ उठ रहा था, ज्यों-ज्यों वह समीप आया उसे चीत्कारों और गोलियों की आवाजें सुनाई दीं। "अल्ला हो-अकबर" के नारों की आवाज ऊँची उठती गई; अभी वह अपने गाँव से दो फर्लाङ्ग की दूरी पर था कि राजासिंह ने देखा—सामने से फ़िसादी आ रहे थे, गाते हुए, नाचते हुए, हँसते हुए!

घबराया हुआ राजासिंह एक गढ़े में गिरकर बेसुध होगया।

दूसरी सायंकाल हो चुकी थी जब उसे होश आया। डरता-डरता काँपता-काँपता हिचकोले खाता हुआ राजासिंह जब अपने गाँव पहुँचा तो उसने देखा कि उसका गाँव बस मिट्टी का एक ढेर था। उसके परिवार के सत्ताईस व्यक्ति मारे जा चुके थे, उसकी पत्नी, उसके तीन भाई, उनकी स्त्रियाँ और उन्नीस बच्चे। श्री गुरु ग्रन्थ साहब के अधजले पन्ने गलियों में इधर-उधर बिखरे हुए थे। कई मकान जल चुके थे, कई जल रहे थे; चारों ओर जानी-पहचानी लाशें औंधे मुँह पड़ी थीं। मासूम बच्चों के कुचले हुए सिर, नौजवान स्त्रियों की बेंधी हुई छातियाँ—दुकानों में दुकानदार कुचले पड़े थे और दुकानों में जैसे कोई झाड़ू दे गया था। मोर्चों में शीशम ऐसे नवयुवक कटे पड़े थे, और मोर्चे टूट चुके थे। एक गली में राजासिंह ने देखा कि दो कुत्ते एक लाश को घसीटकर खण्डहर में ले जा रहे थे। उसे चक्कर-सा आ गया, बेसुध होकर धरती पर गिर पड़ा। रात-भर राजासिंह बेसुध पड़ा रहा—जब अगली सवेरे वह उठा, तो पुलिस गलियों में घूम रही

थी, ज़िले का डिप्टी कमिश्नर आया हुआ था और बड़े-बड़े अफ़सर भी आ चुके थे। राजासिंह ने थाने वालों को सारी गाथा सुनाई, अफ़सरों से आँख बचाकर थानेदार ने उसे ठोकर लगाई और जाते समय उसे पागल बताकर साथ बाँधकर ले गया।

तीन साढ़े तीन मास राजासिंह हवालात में सड़ता रहा और मार्च सन् १९४७ में उसकी मुक्ति हुई। वह अपने प्रान्त को छोड़कर भाग आया, मार्च में जब पोठोहार जल रहा था।

जिस गाड़ी में राजासिंह बैठा, वह हैरान था कि तक्षशिला से चलकर गाड़ी बार-बार रुक जाए, आख़िर मुसलमानों के एक गाँव के पास गाड़ी ठहरा दी गई और देखते-देखते एक भीड़ उस पर टूट पड़ी। गोलियाँ बरसने लगीं, एक-एक हिन्दू और एक-एक सिक्ख को चुन-चुनकर मारा गया। स्त्रियाँ छीन ली गईं, ख़ून की नदी बह निकली। जिस-जिस कमरे के यात्रियों को क़त्ल किया गया, उन्हें उस-उस कमरे में फेंक दिया गया। और जब फ़िसादियों का जी भर गया, जब उनको तसल्ली हो गई तो गाड़ी फिर चल पड़ी।

इस प्रकार लहूलुहान यह गाड़ी लाशों से लदी हुई रावलपिण्डी के स्टेशन पर आ खड़ी हुई और लोग राजासिंह को उतारकर शरणार्थी-कैम्प में ले आए।

जितनी देर तक राजासिंह अपनी कहानी सुनाता रहा, हरीसिंह की आँखों से टप-टप आँसू गिरते रहे। राजासिंह तो गाँव से उस रात बाहर होने के कारण बच गया था, किन्तु हरीसिंह का भाई डॉक्टर प्रीतमसिंह केवल रात-भर के लिये उनसे मिलने को आया था जब यह घटना घट गई। हरीसिंह के परिवार के इक्कीस सदस्य मारे गए। करतार प्रीतमसिंह की पढ़ी-लिखी पत्नी भी उसके साथ आई।थी, बाहर सड़क पर अपनी मोटर जलती देखकर कहने लगी कि थोड़े समय के लिये मुसलमान बनना स्वीकार कर लिया जाए। डॉक्टर प्रीतमसिंह ने तलवार निकालकर अपनी पत्नी का सिर काट दिया और पड़ोस में उसे फेंकते हुए कहा कि यह लो, एक तो तुम्हारा

दीन स्वीकार करने वाली आ गई; और फिर घर का एक-एक व्यक्ति शहीद होगया। हरीसिंह अभागा था कि घायल भी हुआ, किन्तु फौजियों ने वहाँ पहुँचकर उसे बचा लिया—"और अब तो सारी आयु का रोना भाग्य में लिखा गया है!" हरीसिंह बार-बार यही कहता—

कोई चाहे कैसी ही बात क्यों न कर रहा होता, अमरीका हँस पड़ता, हँसे जाता। हँसते-हँसते उसने भी एक कहानी सुनाई— लख्खा मेहरा भय के मारे पेड़ पर चढ़ गया और जितने दिन फ़िसादी गाँव को लूटते रहे, वह उसी पर छिपा रहा। आखिर भूख और दुर्बलता के कारण नीचे गिर गया, अमरीके ने बताया कि गुण्डे उस पर दौड़के टूट पड़े, किन्तु लक्खा पहले ही मर चुका था।

अमरीका फ़िसादियों के साथ-साथ कई गाँव देख चुका था। उसकी आँखों के सामने दूसरे बहुत से अत्याचार किये गए थे। अमरीके की जेब खाली कारतूसों के खोलों से भरी हुई थी, जो फ़िसादी फेंक दिया करते थे—प्रत्येक कारतूस पर अंग्रेजी में लिखा हुआ था—"यह कारतूत विशेषरूप से हिज हाईनेस नवाब बहावलपुर के लिए इंग्लैंड में तैयार किया गया।" और अमरीका एक-एक खोल को जेब में से निकालकर लोगों को दिखाता कि उस कारतूस से कौन मारा गया था और कहाँ मारा गया था। अमरीका कैंप में घूमता हुआ ऊँचे स्वरों में कहता रहता—"मुसलमान भाइयो! अंग्रेजी-राज्य समाप्त हो चुका है, पाकिस्तान बन चुका है। अब कोई हिन्दू-सिक्ख जीवित नहीं रह सकता। ऊपर से आदेश आया है कि इन सबको मुसलमान बना लो।"

कई लोगों को अमरीका अच्छा लगता। कई लोग उसे देखकर हैरान होते कि वह कैसा आदमी है!

नानकचन्द—"चोहे खालसे" गाँव के रहने वाले को अभी तर्क विश्वास नहीं आता था कि वह जीवित है। चोहे पर आक्रमण करने वालों का नेतृत्व उस गाँव के नम्बरदार ने स्वयं किया, प्रदेश का पब्लिसिटी अफ़सर भी उनके साथ था। थाने की सारी पोलीस उनकी सहायता कर रही थी। फ़िसादी

यह कहते कि लाहौर में मास्टर तारासिंह ने मुस्लिम लीग का झण्डा फाड़ दिया था और तलवार निकालकर मुसलमानों को ललकारा था; अमृतसर में मुसलमान स्त्रियाँ छीन ली गई थीं और मुसलमानों के मोहल्लों-के-मोहल्ले जलाकर धूल में मिला दिये गए थे। मुसलमानों की मस्जिदों को भ्रष्ट किया गया है और वे कुछ ऐसी चढ़ा-बढ़ाकर बातें करते कि हिन्दुओं और सिक्खों से कोई उत्तर न बन पड़ता।

आखिर दस मार्च को अढ़ाई हजार के लगभग मुसलमान शहर पर टूट पड़े। गाँव के लोग मोर्चे बाँधकर बैठ गए। सारा दिन और सारी रात गोली चलती रही। अगले दिन सुलह की बात प्रारम्भ हुई। फ़िसादियों ने सारे शस्त्र और दस हजार रुपया माँगा। यह सोचकर कि विरोध कठिन है, हिन्दू और सिक्खों ने ये शर्तें मान लीं। किन्तु हथियार इकट्ठे करके फ़िसादियों ने फिर आक्रमण कर दिया। लोग मरते रहे, मरते रहे—जो लोग हवेलियों में छिपे थे उन्हें गोलियों से उड़ा दिया गया, जो बाहर निकले वे भी गोली का निशाना बन गए। एक स्थान पर बहुत-सी स्त्रियाँ इकट्ठी होकर छिपी हुई थीं, फ़िसादियों ने उनसे मुसलमान हो जाने के लिए कहा किन्तु किसी ने यह बात न मानी। सन्त गुलाबसिंह की पत्नी उन सब स्त्रियों का नेतृत्व कर रही थी, जब उन्होंने देखा कि फ़िसादी किसी की बात मानने वाले नहीं तो हवेली के कुएँ से पानी निकालकर सब स्त्रियाँ नहाईं और सत् श्री अकाल के नारे लगाती हुईं सब कुएँ में कूद पड़ीं! इकानवे स्त्रियों ने इस प्रकार अपने सतीत्व की रक्षा की और कुआँ मुँह तक भर गया।

"झाणां" के मक्खनसिंह को तो कई दिन तक अपना नाम भूला रहा। उसे अपने गाँव का नाम याद न आता। मक्खनसिंह के सामने उसके चचेरे भाई के परिवार को जिसमें पन्द्रह व्यक्ति थे, जिनमें बच्चे भी थे और बूढ़े भी, जंड से लटकाकर, नीचे मिट्टी का तेल फेंककर आग लगा दी गई। आगे-पीछे घेरा डालकर फ़िसादी सारी रात नाचते रहे, ढोल पीटते रहे। जिसके नीचे आग की आँच कम होती, वहाँ और तेल छिड़क देते।

मुगल पड़ी के हरनामदास की एक आँख फ़िसादियों ने निकाल दी

थी, एक हाथ काट दिया था। उसकी जवान लड़की को नंगा करके पहले उसे उसके सामने नचाते रहे, फिर उसका सारे गाँव में जुलूस निकाला गया, फिर उसकी छाती पर 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' खोदा गया, उसके माथे पर चाँद-तारा बनाया गया—और हरनामदास एक आँख से यह सब-कुछ देखता रहा। "आखिर जब सातवाँ गुण्डा मेरी बेटी के सतीत्व पर हाथ डालने लगा, मैं बेसुध हो गया।" और हरनामदास अब भी अपनी कहानी सुनाता हुआ बेसुध हो जाता।

गोरखपुर का जैमलसिंह आजकल दिन-भर कपड़े पहनता रहता, किसी को अपने-आपको छूने न देता, रोटी अपने हाथ से पकाकर खाता। यदि अड़ोस-पड़ोस की छाया भी उस पर पड़ जाती, तो लड़ने लगता। और जब वह एक दिन अपने साथियों की कहानियाँ सुनता हुआ बहक गया, तो कहने लगा कि उसे फ़िसादियों ने गाय का माँस उसके अपने दालान में पकाकर संगीनों के साए-तले खिलाया था। जैमलसिंह, जिसने कभी प्याज का छिलका तक नहीं खाया था, उसे गोमाँस खिलाया गया। और जब कभी यह बात जैमलसिंह किसी से कहता, तो उल्टियाँ करने लगता। फिर दो-दो चार-चार दिन वह कुछ भी पचा न सकता।

'राजड़' गाँव का हुकूमत राय कहता कि हम सब गुरुद्वारे में इकट्ठे हुए। सारा गाँव जलता रहा, जलता रहा, हमने कोई परवाह न की। हमें पूर्ण विश्वास था कि गुरुद्वारे को आग नहीं लगेगी। आखिर जब फ़िसादी वहाँ भी आ पहुँचे, तो हम दरबार साहब के कमरे में जा घुसे। गुरु ग्रन्थ साहब के पत्तों को कैसे आग लग सकती थी—हमने सोचा—किन्तु आग फैलती-फैलती वहाँ भी पहुँच गई। पहली पुस्तक में से जब धुआँ उठा, तो हुकूमत राय कहने लगा, उसके सारे साथी मुसलमान होने के लिए तैयार होगए। बस, वही अकेला भीतर दुबककर बैठा रहा और मिलिट्री ने आकर उसे बचाया। वह नहीं जानता था कि उसके अन्य साथियों पर क्या बीती, कोई उससे कहता कि वे मुसलमान बन गए थे, कोई उससे कहता कि डोगरा फ़ौजियों ने उन्हें मस्जिद में खड़े हुए बचा लिया था।

१३

सोहणेशाह जब से कैम्प में आया था, बीमार रहता था और अब वह सख्त बीमार पड़ गया।

डॉक्टर एक रोग का इलाज करते तो दूसरा उठ खड़ा होता, दूसरी कल ठीक करते तो तीसरी में कोई बिगाड़ हो जाता।

और सोहणेशाह ऐसे कितने ही दूसरे लोग कैम्प में थे। सतभराई हैरान होती कि इतना दूध कहाँ से आ जाता था, इतने फल कहाँ से आते थे, इतनी औषधियाँ कहाँ से आती थीं?

और वे लोग जो रोगी नहीं थे, डॉक्टर से चिट लिखवाकर अपने नाम दूध और फल लगवा लेते। डॉक्टर सारा दिन कैम्प में ही रहते और दोनों समय एक-एक कैम्प में जाकर रोगियों को देखते तथा इलाज करते। सोहणेशाह का दूध पड़ा रहता, सोहणेशाह के फल पड़े रहते; न सोहणेशाह उनकी ओर आँख उठाकर देखता, न सतभराई कोई वस्तु उठाकर मुँह में डालती। पड़ोस के लड़के प्रसन्न थे, सतभराई दूसरे या तीसरे दिन फल

उनमें बाँट देती और उसके बदले में ये लड़के और लड़कियाँ सतभराई के छोटे-छोटे काम करते रहते।

सोहणेशाह जो न कुछ खाता और न कुछ पीता था, अत्यन्त दुर्बल हो चुका था। सतभराई उसके सिरहाने बैठी रहती; सोहणेशाह कभी उसे हृदय से लगाकर दिल की भड़ास निकाल लेता, किन्तु आज कितने दिनों से सोहणेशाह की आँखों से कोई आँसू नहीं गिरा था; वह बौराया हुआ सतभराई की ओर देखता रहता, आँखें फाड़-फाड़कर डॉक्टरों की ओर देखता रहता। यह देखकर कि खुश्क दवाएं उसके सिर को चढ़ रहीं थीं, सतभराई ने उसका इलाज बन्द कर दिया—डॉक्टर आकर उसे दोनों समय देख जाते, दवा भी दे जाते, किन्तु सतभराई शीशी उँड़ेल देती।

सतभराई रात-भर जागती रहती, कभी सोहणेशाह के तलुए मलती, कभी उसके पाँव दबाती। कभी उसे गर्मी लगने लगती, कभी उसे सर्दी लगनी प्रारम्भ हो जाती। कभी वह पानी माँगता, कभी उसे पेशाब आ जाता। कई दिन तो सोहणेशाह अपने कपड़ों में ही शौच कर देता। कपड़ों के दो-दो जोड़े सरकार की ओर से मिले हुए थे, सतभराई ये कपड़े धोती रहती और सुखाती रहती।

आखिर सोहणेशाह और अधिक बीमार पड़ गया। बार-बार कपड़े फाड़ने लगता, उठ-उठ के तम्बू से बाहर निकल जाता। खाने लगता तो खाए जाता और हँसने लगता तो हँसता ही जाता।

लोग कहते कि उसे हवा लग गई है, सरसाम हो गया है, और डॉक्टर टीकों-पर-टीके लगाए जाते। एक दिन सवेरे जब सतभराई की आँख खुली तो सोहणेशाह तम्बू में नहीं था। सतभराई अवाक् रह गई, उसने सारा कैम्प छान मारा लेकिन सोहणेशाह कहीं भी नहीं था।

अपने तम्बू में अकेली बैठी सतभराई ने फूट-फूटकर फ़रियाद की, जीभर के रोई। न जाने फिर कहाँ से एक जंगली कुत्ता उसके तम्बू के आगे बैठ गया और किसी को उस तम्बू की ओर न फटकने देता।

सतभराई रोती रही, रोती रही, रात हो गई!

दूसरे दिन पड़ोस के तम्बुओं की स्त्रियाँ उससे समवेदना जताने के लिए आने लगीं। 'हाय चचा' 'हाय चचा' करती हुई सतभराई को रोता हुआ देखकर एक अधेड़ आयु की महिला ने यूँ ही बातें करने के बहाने पूछा—"वह तेरा पिता है या चचा?"—सतभराई आगे से घबरा-सी गई, जैसे कोई हिचकोले खा रहा हो, उससे कोई उत्तर न बन पड़ा।

सतभराई ने और भी फूट-फूटकर रोना आरम्भ कर दिया—

कैम्प के कर्मचारी भी आए, सोहणेशाह के लिए दूध छोड़ गए, फल छोड़ गए, समय पर आकर खिचड़ी दे गए; लेकिन सतभराई का किसी वस्तु की ओर आँख उठाने को मन न चाहा।

कंटीली बाड़ की चारदीवारी के साथ लगकर सतभराई सोहणेशाह की प्रतीक्षा करती रही। सायंकाल उसका मन बहलाने के लिए उसकी पड़ोसिनें सतभराई को अपने साथ 'लंगर' में ले गईं जहाँ सब के लिए खाना बनता था।

सतभराई को यह काम बहुत भला लगा। कभी चूल्हों में लकड़ियाँ डालती, कभी आटे के पेड़े बनाती, कभी रोटियाँ पकाती, कभी बर्तन मलने लगती। शरणार्थी-स्त्रियाँ जब मिलकर बैठतीं तो मुसलमानों को लाख-लाख गालियाँ देतीं। उन्हें 'मुसले' कहकर बुलातीं—सतभराई उन्हें समझाती कि वे मुसलमान थोड़े ही थे, वे तो फ़िसादी थे; जो पड़ोसी अपने पड़ोसी पर अकारण अत्याचार करता है वह मुसलमान क्योंकर हो सकता है? फिर उसने अपने गाँव की बात सुनाई कि फ़िसादियों ने तो मुसलमानों को भी मार डाला था, इसलिए कि वे हिन्दुओं और सिक्खों की सहायता पर तुले हुए थे।

अपने गाँव की चर्चा करते हुए सतभराई की आँखों में फिर आँसू भर आए।

रोते-रोते वह उस रात सो गई। न जाने जब दिन ढलता तो वह जंगली कुत्ता कहाँ से आके सतभराई के तम्बू के आगे बैठ जाता और जबतक सतभराई अगले दिन तम्बू से बाहर न निकल जाती वह अपने

स्थान से न हिलता ।

एक दिन 'लंगर' में काम करते-करते सतभराई ने एक-दो बार अल्ला की कसम खा ली, एक स्त्री कहने लगी—"ये अल्ला की कसमें तो बस वहीं रह गईं !"

"इस प्रकार नाखुन से मांस किस प्रकार अलग होगा !" एक और बोली—

और फिर एक लम्बी कहानी छिड़ गई, साँझी खानकाहों की, साँझे गीतों की साँझे त्यौहारों की, साँझी भाषा की और साँझे पहनावे की—वह स्नेह जो हिन्दुओं और मुसलमानों में था, वह प्यार जो सिक्खों और मुसलमानों में था ।

एक कहने लगी कि कैसे उसके पड़ोसी मुसलमान ने उसे अपनी लड़की बनाया हुआ था, बालपन से उसके कपड़े इत्यादि का तमाम खर्च वही किया करता था, उसने स्वयं लड़का ढूँढ़ कर उसका विवाह किया, लोगों की याद में ऐसा विवाह शायद ही किसी का हुआ होगा ।

और उसी के गाँव के मुसलमान उसके पति के गाँव पर टूट पड़े और नेजों से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये ।

लाजो ने यह बात सुनते ही हँसना आरम्भ कर दिया, बहुत देर तक वह हँसती रही, जैसे पागल हो गई हो । साथ-ही-साथ कृपाण लाजो अभी तक गले में पहने हुए थी । लोग कहते थे कि उसने इस कृपाण से तापो और तापो के बच्चे को मौत के घाट उतारा था । जब फिसादियों ने उनकी हवेली पर आक्रमण किया तो बाहर से आवाज़ आई—"इस्लाम स्वीकार कर लो अथवा मरने के लिये तैयार हो जाओ !"—और तापो कहने लगी—"एक पल के लिये कह दो कि हम मुसलमान होगए !" उसके मुँह से ये शब्द निकले ही थे कि लाजो ने कृपाण पहले तापो के कलेजे में भोंकी और फिर उसके बच्चे के गले पर फेर दी ।

और लोग अभी तक लाजो से कन्नी काटते थे । वह फिसादियों से शेरनी की भाँति लड़ती हुई बचकर आई थी । लाजो सदैव सतभराई के

साथ सटकर बैठती, सतभराई उसे बहुत अच्छी लगती, उसे—"बेटा-बेटा" कहती रहती।

जब अवकाश मिलता, सतभराई कंटीले जंगले के पास आकर खड़ी हो जाती और सोहणेशाह का मार्ग देखती रहती। खड़े-खड़े अक्सर उसकी आँखों में आँसू छलछला उठते।

एक दिन वह इसी प्रकार रो रही थी कि उसके पीछे लाजो आकर उससे प्यार करने लगी। ज्यों-ज्यों लाजो उसे हृदय से लगाती, त्यों-त्यों कृपाण सतभराई को चुभने लगती—जिस कृपाण से लाजो ने एक स्त्री और उसके बच्चे को मार डाला था, जिससे वह बहुतों को घायल करके आई थी।

उस दिन रात को सोए हुए सतभराई को ऐसे अनुभव हुआ, जैसे बाल खोले हुए लाजो उसके शिविर के बाहर बैठी है और उसके हाथ में उसकी कृपाण दमक रही है। सतभराई हाँपती हुई पसीने में तर लेटी रही, लेटी रही और उसकी आँखें प्रयत्न करने पर भी न खुल सकीं। जब सतभराई उठी तो नियमानुसार काला कुत्ता उसके शिविर के बाहर बैठा था, सतभराई को जागी देखकर वह वहाँ से चला गया।

अगले दिन जब बात करते हुए सतभराई के मुँह से दोबारा अल्ला की क़सम निकली तो लाजो ने यह वाक्य उससे कहा—"अल्ला के मारे हुए तो यहाँ आ गए हैं।"

और फिर लाजो ने अपने एक बुजुर्ग की कहानी सुनाई, जो सदैव मुसलमानों के विरुद्ध बोलता रहता था। वह कहा करता था कि मुसलमानों ने अपने राज्यकाल में बहुत अत्याचार किये थे इसलिये आजकल प्रत्येक सिक्ख लड़की को प्रत्येक मुसलमान से पर्दा करना चाहिए, ताकि उनकी कुदृष्टि न पड़े। लाजो कहती कि उसे यह भी शिकायत थी कि लाजो की सहेलियाँ मुसलमान लड़कियाँ हुआ करतीं थीं लेकिन उन दिनों तो लाजो अपने उस बुजुर्ग पर हँसा करती थी।

काम करती हुई कुछ स्त्रियाँ कहतीं—वे बुजुर्ग ठीक कहते थे, कुछ कहतीं यह बात ठीक नहीं थी, यह एक उन्माद था जिसके कारण इतने

अत्याचार हुए थे। वैसे हिन्दू-सिक्ख और मुसलमान सदैव एक-दूसरे से मिल-जुलकर रहते आ रहे थे।

उस दिन सायंकाल से अकेली बैठी हुई सतभराई सोचती कि क्या वह हिन्दू थी, सिक्ख थी या मुसलमान थी, क्या थी ? कुछ उसकी समझ में नहीं आ रहा था, और फिर वह सोचती—राजकर्णी जिसे वे पीछे छोड़ आए थे उसका क्या धर्म था। राजकर्णी हिन्दू थी, सिक्ख थी या मुसलमान थी, क्या थी ? फिर उसे विचार आता कि उसके पिता का क्या धर्म था, उसका पिता जो नमाज पढ़ता था, निर्धनों की सहायता करता था, जिसने मस्जिदें बनवाई थीं, और जो अल्ला के नाम पर उछाले गए नेजों से बींधा गया।

"यह मजहब क्या है ?" यह सोचती-सोचती सतभराई उस रात फिर सो गई—

और सोए हुए उसने बहुत बुरे सपने देखे। कभी वह देखती कि लाजो अपनी कृपाण से उसकी बोटी-बोटी अलग कर रही है, कभी वह देखती कि काला कुत्ता उसके शरीर को नोच-नोचकर खा रहा है, कभी वह देखती कि उसे नंगा करके उसका जुलूस निकाला जा रहा है। जिस प्रकार उसके साथ के गाँव में फ़सादियों ने एक सिक्ख-लड़की के साथ किया था......कभी वह देखती वह मस्जिद में से गुजर रही है, कभी वह देखती वह मन्दिरों में घूम रही है, कभी उसे ऐसे अनुभव होता वह गुरुद्वारों में बैठी है, कोई वस्तु उसकी खो गई है, वह उसे ढूँढ़ती है। जब वह वस्तु उसे मिल जाती है तो दूसरी खो जाती है। इस प्रकार की निरन्तर खोज उसे थका रही थी कि उसकी आँख खुल गई।

१४

लक्ष्मी और परमेसरी अपने तम्बू में बैठी हँस रहीं थीं, हँसे जातीं, हँसे जातीं!

दोनों के पति और दूसरे सम्बन्धी फ़िसादियों के हाथों मारे जा चुके थे और उन्हें एक मिलिट्री की लारी फ़िसादियों से छीनकर लाई थी।

और लक्ष्मी सदैव सोचा करती कि यदि मिलिट्री वाले न पहुँचते तो··· तो···और परमेसरी वह कुछ बेधड़क कह दिया करती जो लक्ष्मी कह नहीं सकती थी।

आखिर यह कैम्प का जीवन भी कोई जीवन था, और फिर न जाने कहाँ-कहाँ की ठोकरें उनके भाग्य में लिखी थीं। नए सिरे से फिर पति ढूँढना, फिर उन्हें विवाह के लिये सहमत करना, फिर बच्चे उत्पन्न करना, फिर घर बसाना, फिर चक्की पीसना!

और जब परमेसरी इतना कुछ कह चुकती तो लक्ष्मी सोचती—आखिर जो उन्हें पकड़कर ले जा रहे थे, उनमें क्या बुराई थी। उन्होंने इतनी

लूटमार की थी, पोठोहार का एक-एक मुसलमान सात-सात पत्नियों को आजकल रोटी खिला सकता था। और फिर वे अपने पड़ोसी ही तो थे—

परमेसरी कहती—हमने तो बस बच्चे जनने हैं और रोटी खानी है, बच्चे पैदा करने हैं और कपड़े पहनने हैं।

और फिर वे दोनों ऊँची आवाज में हँसने लग पड़तीं, कितनी देर तक हँसती रहतीं। लोग इन दोनों की गहरी मित्रता पर हैरान थे—रंग-बिरंगे दुपट्टे ओढ़तीं, धोबी के धुले हुए वस्त्र पहनतीं, बालों को टेढ़ा-सीधा करके बनातीं, उछल-कूदकर सारे कैम्प में ऊधम मचाए रखतीं। आज शाम को उनके शिविर में पहले से कुछ अधिक ही गूँज थी, वे हँसे जातीं, हँसे जातीं।

बात यूँ हुई—१६०७ नम्बर के शिविर में एक बूढ़ा रहा करता था जिसकी आँखें फ़िसादियों ने निकाल दी थीं। उसके साथ तेरह वर्ष की एक उसकी बेटी थी जो उसके छोटे-छोटे काम करती रहती, बूढ़े का हाथ पकड़कर जो उसे इधर-उधर ले जाती। पिछले कुछ दिनों से यह लड़की सख्त बीमार थी, सारे डॉक्टर हर कोशिश कर चुके थे लेकिन उसे आराम नहीं आता था। पिछली रात को उसकी दशा बहुत खराब होगई, उसकी साँस उखड़ गई, नब्ज डूब गई; आँखें खुली-की-खुली रह गईं, उनमें रोशनी कम हो रही थी, बूढ़े ने उसकी आवाज सुनकर कुहराम मचा दिया।

आधी रात की वेला थी—

परमेसरी और लक्ष्मी सब बात जानती थीं। कितनी देर तक वे एक-दूसरी के साथ खुसर-फुसर करती रहीं। आखिर लक्ष्मी उठी और अन्धे बूढ़े के तम्बू में चली गई।

"क्यों बाबा! क्या छोटी बहुत बीमार हो गई है?"

बूढ़ा पहले से भी अधिक रोने लगा—

"मैं कहती हूँ, छोटी को निमोनिया है, लेकिन इन डॉक्टरों से कोई क्योंकर कहे!"

बूढ़ा रोता जा रहा था—रोता जा रहा था।

"बाबा धीरज धर, अब रोने से क्या बनेगा। ये दुःख तो अब हमारे भाग्य में लिखे जा चुके हैं।"

बच्ची का साँस और अधिक उखड़ गया और अब आवाज इस प्रकार आती थी जैसे चक्की चल रही हो।

"बाबा, अब तो छोटी कुछ क्षणों की मेहमान है, ईश्वर का नाम ले, कुछ कर! काहे को इस प्रकार फ़रियाद कर रहा है, किसके सामने इस प्रकार रो रहा है?"

बूढ़ा और ऊँची आवाज से रो रहा था, उसका क्रन्दन और भी करुणा-पूर्ण हो चुका था। बच्ची का साँस धीमा पड़ने लगा जैसे रुक गया हो; जितनी देर तक बातें करती रहीं, लक्ष्मी ने बीमार बच्ची के नीचे से कम्बल भी निकाल लिया—उसने बस मोटी-सी चादर ही उसके नीचे रहने दी—घुप अँधेरी रात थी—शिविर के भीतर बूढ़े के क्रन्दन ने और बच्ची की मृत्यु ने अन्धकार को और भी भयावना बना दिया था। बातें करती-करती लक्ष्मी दोनों कम्बल काँख में दबाकर बाहर आ गई।

और आज दोनों परमेसरी और लक्ष्मी धोबियों के क्वार्टरों में वे दोनों कम्बल दस-दस रुपयों में बेच आई थीं।

वे जबसे यहाँ आई थीं कपड़े चुराकर बेचा करती थीं, लेकिन जिस प्रकार उन्होंने ये कम्बल प्राप्त किये थे, उन्हें स्वयं विश्वास नहीं आ रहा था कि वह स्वप्न था अथवा सत्य था। परमेसरी सुखाए जाते हुए कपड़ों को हथियाने में बड़ी अभ्यस्त थी, काँटेदार तार पर लोग कपड़े फैला देते, फिर परमेसरी अपने कपड़े वहाँ फैलाने के लिये जाती और फिर चुपके-से एक-दो पराए कपड़े भी उठा लाती। फिर कुछ समय बाद अपने कपड़े लाने के लिये जाती तो फिर दो-एक पराए कपड़े उठा लाती। इससे पहले कि लोग शोर मचाते, ये दोनों जाकर धोबियों के क्वार्टरों में उन्हें बेच आतीं।

चार-चार बार उन्होंने नाम बदलकर सरकारी-कर्मचारियों से कपड़े लिये, कभी कोई वेष बदलकर जातीं और कभी कोई; और जैसे भी होता कम्बलों के जोड़े अपने नाम लिखवाकर ले आतीं। जो कोई अमीर आदमी कैम्पों

में आता, उसे उन दोनों पर असीम दया आती। जिस दिन किसी ने आना होता, वे चीथड़े पहन लेतीं; न जाने कैसे उनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती, अड़ोस-पड़ोस और कैम्प वालों को पता था कि उनका कोई संरक्षक नहीं था—उनके सारे सम्बन्धी फ़िसादों की बलि बन चुके थे। उन्हें भी फ़िसादी ले जाते यदि मिलिट्री की लारी समय पर उधर न पहुँच जाती।

प्रातःकाल वे सत्संग में शामिल होने के बहाने वहाँ से खिसक जातीं और फिर जब उनके जी में आता घर लौटती। गली-गली, बाजार-बाजार घूमती रहतीं; कहीं खड़ी हो जातीं और कहीं बैठ जातीं।

फिर उन्हें एक ताँगेवाला मिल गया, सारा दिन उन्हें ताँगे में घुमाता रहता और कभी तो ये रात को भी कैम्प में न आतीं।

इस प्रकार होता रहा होता रहा। आखिर एक दिन सायंकाल को परमेसरी ताँगे से उतर कर सामने एक दुकान में से कोई वस्तु लेने गई, भीड़ बहुत थी। जब लौटी तो न वहाँ ताँगा था, न लक्ष्मी और न ताँगेवाला था। वह इधर-उधर उन्हें ढूँढ़-ढूँढ़कर थक गई, किन्तु वे उसे कहीं न मिले—आखिर थक-हारकर कैम्प में चली आई।

परमेसरी का हृदय कहता था कि लक्ष्मी एक दिन उसके पास अवश्य लौट आयगी। वह कटीली बाड़ के पास खड़ी होकर उसकी बाट जोहती रहती।

कंटीली तार के पास खड़ी परमेसरी ने देखा कि दस खम्भे छोड़कर सतभराई भी खड़ी होती और किसी की प्रतीक्षा कर रही होती। एक दिन परमेसरी उसके पास आकर खड़ी होगई—

"बहन, तू किसकी राह देख रही है?" परमेसरी ने पूछा—

"मेरा चचा···" और शेष-वाक्य उसके रुँधे हुए गले में ही अटक गया—

और फिर वे दोनों प्रतिदिन एक ठिकाने पर आकर खड़ी हो जातीं। परमेसरी कहती कि इस बुरे शहर में जो कोई भी जाता है लौटकर नहीं आता। शहर में मोटरें चलतीं थीं, लारियाँ चलतीं थीं, ताँगे चलते थे,

तेज़···बहुत तेज़···जो कहीं-न-कहीं ले जाते थे।

परमेसरी बोलती जाती, बोलती जाती। सतभराई सोचती—यह स्त्री कैसी बातें करती है।

"···मेरा चचा तो अवश्य आयगा!"—और प्रतिदिन सायंकाल को जब वे निराश होकर अपने तम्बू की ओर जाने लगतीं तो सतभराई यह कहा करती।

रात को प्रतिदिन सतभराई सोहणेशाह का बिस्तर बिछा देती। सवेरे उसके कपड़ों का जोड़ा झाड़-पोंछकर, संवारकर उसकी प्रतीक्षा करने लगती। कितने दिन से कैम्प के कर्मचारी सोहणेशाह का राशन बन्द कर देने की सोच रहे थे। सतभराई प्रतिदिन उन्हें एक दिन और प्रतीक्षा करने के लिए कहती—

हर रोज एक स्थान पर खड़ी होने के कारण परमेसरी ने सतभराई पर डोरे डालने आरम्भ कर दिये—

अपने तम्बू के एक कोने में परमेसरी ने वे पैसे इकट्ठे करके रक्खे हुए थे, जो उसने और लक्ष्मी ने चुराई हुई वस्तुओं को बेचकर इकट्ठे किये थे। कभी वह सतभराई के लिए कुछ खरीद लाती और कभी उसे कुछ और वस्तु ला देती। वह बड़ा आग्रह करती, किन्तु सतभराई कभी उसके साथ कैम्प से बाहर न गई।

अपने तम्बू में अकेली बैठी परमेसरी सोचती—काश! सतभराई मेरे हत्थे चढ़ जाय। वह कैसे गन्दे कपड़े पहने रहती थी, यदि वह कहीं लक्ष्मी का पड़ा हुआ काला दुपट्टा ओढ़ ले···यदि वह कहीं बालियाँ पहन ले जो कभी लक्ष्मी पहना करती थी, तो उसका चाँद ऐसा रूप निखर आए,..यदि वह कहीं चलकर दो दिन हलवाई की दुकान से कलाकन्द खाए तो मुखड़े पर आभा फूट पड़े। सतभराई जो मेरे साथ कभी शहर चली चले तो···एक बार···एक बार···अब मैं कभी ताँगे पर से नहीं उतरूँगी।·····

कम्पाउँडर बार-बार मेरे तम्बू के आगे आ खड़ा होता है, डॉक्टर

५०६ नम्बर के तम्बू में ही घुसा रहता है, आटे वाले को जब भी देखो, हस्पताल की नर्स से हँस-हँसकर बातें कर रहा होता है। मेरे पड़ोस में रहने वाली लड़की आजकल हर समय प्रसन्न चित्त रहती है, कोई बात अवश्य होगी। उस तम्बू का पुरुष उस तम्बू की स्त्री की ओर बार-बार झाँकता है; अमुक तम्बू की स्त्री अमुक तम्बू के पुरुष के पीछे-पीछे घूमती है।......

"सतभराई आज मैंने तेरे चचा को बाजार में देखा था!" एक दिन परमेसरी शहर से लौटकर कहने लगी—

यह झूट बोल रही है—सतभराई के दूसरे कान में किसी ने फूँका।

"तो क्या तुमने उसको कहा था कि मैं यहाँ उनकी प्रतीक्षा किया करती हूँ"...सतभराई ने यह कहकर उसे टाल दिया—

परमेसरी ने बड़ा आग्रह किया कि सतभराई उसके साथ शहर चली चले।

"जवान लड़कियाँ हमारी ओर तो कभी यूँ बाहर नहीं निकला करतीं!" आखिर सतभराई ने यह कहा और उसकी आँखें आँसुओं से छलकने लगीं—

१५

कुलदीप एक सिक्ख लड़का था !—

गोरा चिट्टा, जैसे हाथ लगाते ही मैला हो जाय ! ऊँचे कद का, चौड़ा सीना, सुडौल भुजाएँ; हर समय लोगों की सेवा में तत्पर रहता। जब हँसता तो उसके गोरे गालों पर लालिमा दौड़ जाती, जब लजाता तो रक्तिमा दहकने लगती। जवान लड़कियाँ सदैव कुलदीप की मोटी-मोटी आँखों को देखने के लिए विकल रहा करतीं, किन्तु कभी उसने पराई स्त्री की ओर आँख भर कर न देखा। जब धोए हुए, सूखते हुए उसके गज-गज भर के रेशमी बाल बिखरे हुए होते, उसकी आकृति और भी भरी-भरी, और भी श्वेत और कोमल-कोमल दिखाई देती। उसके मुँह से कभी कोई आवाज नहीं निकली थी। हर किसी को 'जी' 'जी' कहकर उत्तर देता, उसके फूल की पत्तियाँ ऐसे कोमल अधरों से मधु बरसता रहता।

कुलदीप के बारे में प्रसिद्ध था कि जब उनके गाँव पर आक्रमण हुआ, फ़िसादियों ने एक-एक को मार डाला; किन्तु जब उसकी बारी आई तो

एक ने छवि तान ली, फिर दूसरे ने आकर वह उठी हुई छवि पकड़ ली। फिर वे परस्पर झगड़ने लगे—अभी यह झगड़ा हो ही रहा था कि मिलिट्री की लारी वहाँ पहुँच गई······

और फिर जब बचे-खुचे लोग अपना-अपना सामान ट्रकों में भरकर चलने लगे तो मिलिट्री वालों ने 'गुटकों' और पाठ की पुस्तकों के एक गट्ठे को नीचे गिरा दिया, क्योंकि लारी में स्थान नहीं था। चलती हुई लारी में से कुलदीप छलाँग लगाकर नीचे आ गिरा, कहने लगा कि वह 'गुटकों' और पाठ की पुस्तकों को पीछे छोड़कर नहीं जायगा। मिलिट्री वालों ने उसे डराया-धमकाया, किन्तु कुलदीप कहने लगा "कि मैं गाँव में रहने के लिए तैयार हूँ, मुझे फिर आकर ले जाना; किन्तु गुटकों और गुरुमुखी की पुस्तकों को अवश्य ले जाओ।"

और अब जबसे वह कैंप में आया था, दिन-रात अपने लुटे-पुटे साथियों की सेवा में लगा रहता। किसी को 'बहन जी' किसी को 'माता जी' कहकर पुकारता। किसी को 'पिता जी' कहकर किसी को 'भाई साहब' कहकर बुलाता, किसी को 'चाचा जी' और किसी को 'दादा साहब' कहता; प्रत्येक से मधुर वाणी में बात करता। न किसी से रुष्ट होता न किसी को अपने से नाराज होने देता।

कुलदीप का शिविर एकान्त में था, उसका कोई सम्बन्धी नहीं बचा था, एक अकेला अपने शिविर में रहता। कई बार जब वह अकेला अपने शिविर में पड़ा होता तो उसे अपना चचेरा भाई स्मरण हो आता जो लायलपुर में जमीन की देखभाल के लिए गया हुआ था।

वैसे हर काम में हाथ बँटाने के लिए कुलदीप सबसे आगे हुआ करता था। वास्तव में उसके जिम्मे बीमार बच्चों को दूध पहुँचाने का काम था। जो लोग डिपो पर आकर दूध न ले सकें, वह उनके शिविरों में जाकर दूध पहुँचाया करता था।

जब से सोहणेशाह गया था, चाहे कुछ दिनों के बाद सतभराई उसका दूध कभी ले लिया करती और कभी न लिया करती, किन्तु उसने सोहणेशाह

का नाम न कटने दिया। प्रतिदिन 'कल' कह छोड़तीं। दूसरे स्वयंसेवक तो सोहणेशाह के भाग को इधर-उधर कर देते, किन्तु कुलदीप की समझ में न आता कि वह कैसे अपने हिसाब को साफ रखे।

और जब अन्तिम दिन के लिए कुलदीप आया, सतभराई फूट-फूटकर रोने लगी; सोहणेशाह अभी तक नहीं आया था। जवान सतभराई अपने-आपको ढाढ़स दे-देकर थक गई थी, उसे चारों ओर भयानक अन्धकार दिखाई देता। उसे ऐसे अनुभव होता, जैसे वह गीला आटा है—कुत्ते और कव्वे जिसे नोच-नोचकर खा जाएँगे। लोगों ने सारी आयु कैम्प में थोड़ा ही बैठा रहना था, और सतभराई को अब यह चिन्ता सताने लगी कि वह कहाँ जायगी—उसका तो अब सोहणेशाह के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं था।

सतभराई फूट-फूटकर रोती रही। कुलदीप कुछ समय तक उसके तम्बू में खड़ा रहा, फिर जैसे उसकी टाँगें कंपकंपाने लगीं, उसकी आँखें सजल हो उठीं, वह तम्बू से बाहर निकल आया।

कुलदीप का अंग-प्रत्यंग जैसे जकड़ा गया हो। वह चलना चाहता और उससे चला न जाता, दूध कहीं डालता और वह गिर कहीं पड़ता, न उसका डिपो में मन लगता और न अपने तम्बू में।

लगभग एक घण्टे के बाद कुलदीप फिर सतभराई के तम्बू की ओर आया, उसके तम्बू से अभी तक सिसकियों की आवाज सुनाई दे रही थी। काला कुत्ता कुलदीप को तम्बू की ओर आते देखकर पूँछ उठाकर चलने ही वाला था कि फिर बैठ गया। कुलदीप तम्बू में अभी तक रोती हुई सतभराई की आवाज सुनकर लौट आया।

'यह काला कुत्ता—जैसे इससे मेरी जान-पहचान हो'—कुलदीप सोचता, काला कुत्ता सदैव कुलदीप की ओर प्यार-भरी नजर से देखा करता।

अगले दिन कपड़ों से भरे हुए ट्रंक आए, कुलदीप दिन-भर उन्हें बाँटता रहा। स्त्रियों के लिए दुपट्टे थे, कमीजें थीं; पुरुषों के लिए पायजामे थे, कुर्ते थे, पगड़ियाँ थीं। एक ट्रंक प्रत्येक माप की जूतियों से भरा पड़ा था,

एक ट्रंक कैनवस के बूटों से भरपूर था, और बनियानों के बण्डल-के-बण्डल बँधे हुए थे, जुराबों की गठड़ियाँ लदी हुई थीं।

दिन-भर कुलदीप काम में लगा रहा और चकित रहा उन लोगों की सहृदयता पर जिन्होंने यह सब कुछ शरणार्थियों के लिए भेजा था। जब शाम हुई तो वह अपने तम्बू में सुस्ताने के लिए आ गया। उस समय उसका जी चाहा कि वह अपने हिस्से की कमीज को जरा पहनकर तो देखे।

कमीज पहनकर कुलदीप का हाथ अपने-आप ही कमीज़ के जेब के अन्दर चला गया, उसमें एक पत्र था—

"ऐ मेरे अभागे देशवासी! यह कमीज मैं तेरा तन ढाँपने के लिए भेज रही हूँ। इस कमीज की कटाई मैंने बड़े स्नेह से की है, इसे बड़े अरमानों के साथ सिया है। मैंने हर बखिये में अपनी भावनाएँ और अनुभूतियाँ सँजोई हैं, यह कमीज रावलपिंडी से दूर दिल्ली में एक बेबस पोठोहारी की ओर से है, एक नौजवान पोठोहारी के लिए, जिसकी हृदय की धड़कनें मैं यहाँ बैठी सुन रही हूँ, अनुभव कर रही हूँ। मेरे देशवासी! यह कमीज पहनकर तू सदा सुखी रहे। यह कमीज पहनकर तू अपने-आपको अकेला अनुभव न करना! प्रतिदिन रात को सोने से पूर्व चाँदनी के द्वारा मैं तुझसे बातें किया करूँगी, तेरे आराम के लिए, तेरी प्रसन्नता के लिए; हर रात को मैं चाँद की किरणों के द्वारा तुझे आशीष भेजा करूँगी, जय हिन्द! ऐ मेरे अनदेखे साजन!"

बाहर चाँद अपने पूरे यौवन पर था। कुलदीप तम्बू से बाहर चाँदनी में आकर खड़ा होगया, चाँद की किरणें जैसे उसे अपने अंक में भर रहीं थीं—कुलदीप पर मौन छा गया।

न जाने कितनी देर तक वह वैसे-का-वैसा खड़ा रहा, खड़ा रहा। कभी चाँद की ओर देख लेता और कभी अपने चारों ओर पड़ती हुई चन्द्रकिरणों को; जैसे कोई उसके कानों में कुछ कह रहा हो, जैसे धीमे-धीमे कोई उसके अंग-अंग को सहला रहा हो!

कुलदीप के पास से कैम्प के कर्मचारी उसके मुँह की ओर देखते हुए गुज़रते रहे, कैम्प में बसने वाले गुज़रते रहे, लेकिन कुलदीप ने किसी की ओर न देखा, न किसी की कोई बात सुनी।

"मेरे अभागे देशवासी! यह क़मीज़ मैं तेरा तन ढाँपने के लिये भेज रही हूँ।"

और वह क़मीज़ कुलदीप के गले में पड़ी थी। उसे इतना भी स्मरण न रहा था कि उसके साथ पायजामा भी था, उसके साथ पगड़ी भी थी। बाक़ी कपड़े उसने पुराने ही पहने हुए थे—

"मेरे देशवासी! यह क़मीज़ पहनकर तू कभी अपने-आपको अकेला अनुभव न करना!!"

और कुलदीप कैम्प में वैसे-का-वैसा टहलने लगा। घूमते-फिरते वह सतभराई के तम्बू के समीप से गुज़रा, काला कुत्ता अपने पंजों में अपनी थूथनी छिपाए लेटा हुआ था। कुलदीप को ऐसे अनुभव हुआ जैसे तम्बू में अभी तक सतभराई की आवाज़ आ रही थी।

"एक बेबस पोठोहारिन की ओर से एक नौजवान पोठोहारी के लिये।" —और कुलदीप सोचने लगा—पोठोहारिनें तड़प रहीं थीं, आज अप्सराओं के देश को आग लगा दी गई थी। पोठोहार की लड़कियों के क़द अब ऊँचे नहीं उठेंगे, पोठोहारनों के रक्तिम कपोलों से लालिमा विलीन हो जायगी, पोठोहारनों के झुँड-के-झुँड अब बरगद-तले ऊधम नहीं मचाया करेंगे, नदियाँ वीरान रहा करेंगी; पोठोहारनों के गज़-गज़ भर लम्बे बाल पथिकों से लिपट नहीं जाया करेंगे, उनकी काली-स्याह आँखें आने-जाने वालों पर मोहिनी नहीं फूँका करेंगी, पोठोहारनों की मधुमय वाणी···उनके गीत··· अब मर जाएँगे, मिट जाएँगे!

काफ़ी रात गए तक कुलदीप घूमता रहा, घूमता रहा। दूर···सड़क पर कहीं कोई माहिये की तान उड़ा रहा था—

दो पत्तर अनारां दे!
सड़गई जिन्दड़ी

लग गए ढेर
अंगारां दे !

कुलदीप तीसरी बार जब उस कंटीली बाड़ के पास खड़े संतरी के समीप से गुजरा, तो—"क्यों सरदार ! क्या नींद नहीं आ रही ?" संतरी ने उसे बातें करने के लिये बुला लिया—

"अब यह कैम्प टूट जाएगा।" फिर संतरी ने उसे बताया—"लोग अपने-अपने घरों को लौट जाएँगे, कभी चोली-दामन का साथ भी छूटा है। क्या हुआ, यदि हिन्दू और मुसलमान यूँ आपस में लड़ पड़े, क्या कोई अपना घरबार भी छोड़ता है ?"

संतरी कितनी देर तक यूँ बातें करता रहा और कुलदीप सुनता रहा—

आखिर बड़े फाटक वाले संतरी की एक स्त्री के साथ झड़प की आवाज सुनाई दी—ये दोनों दौड़कर उधर पहुँचे—

परमेसरी प्रतिदिन रात गए कैम्प में आया करती थी, संतरी कह रहा था कि वह उसे चेतावनी दे-देकर थक चुका था।

और परमेसरी रो-रोकर अभिनय कर रही थी। बार-बार वह कहती कि जब हिन्दू या किसी सिक्ख का पहरा लगा करता था तो कोई उससे कुछ नहीं कहता था, किन्तु ये खोटे लोग तो हमें कैम्प में भी जीने नहीं देते !

मुसलमान संतरी के बारे में वह अपशब्दों से बार-बार काम लेती।

१६

उस रात निरन्तर कुलदीप दिल्ली शहर की गलियों में घूमता रहा। कभी वह मोटरों के नीचे आने लगता, कभी ताँगे वाले उसे गिराकर गुजर जाते, बसों के पीछे दौड़ता-दौड़ता वह हाँपने लगता, किन्तु वह उसके लिये न रुकतीं। एक गली में से जब उसे दूसरी गली में जाना पड़ता, उसके आगे जैसे चट्टानें आकर खड़ी हो जातीं, एकदम ऊँची चट्टानें जिन्हें फाँदकर जाने का कोई मार्ग न होता। वह कितनी देर तक उनको अपने नाखूनों से खुरचता रहता। कभी-कभी उसे सात-सात मंजिल वाले मकानों की दीवारों पर चलना पड़ता, जिन पर से नीचे को देखते हुए उसकी दृष्टि खो जाती। उसके पाँव बार-बार लड़खड़ाते, बार-बार वह हिचकोले खाता। जिस मार्ग पर वह चलता, वह मार्ग तलवार की धार के समान तेज होता। कभी वह सीढ़ियाँ चढ़ने लगता और चढ़ता ही जाता, वे सीढ़ियाँ कहीं समाप्त ही न होतीं। कहीं सीढ़ियों पर से उतरने लगता तो उतरता ही जाता और उसकी टाँगों में दर्द होने लगता और फिर भी यह उतराई कहीं समाप्त न होती। एक गली

में वह दाखिल होता तो उस गली में एक और गली निकल आती, और फिर वह गली किसी और गली में जा निकलती। फिर किसी और—किसी और—किसी और—और—इस प्रकार वह दोबारा पहली जगह पर पहुँच जाता।

दिल्ली के लोग उसे ऐसे दिखाई देते जैसे लैटरबक्स चल रहे हों! एक कॉलिज के पास से वह गुजर रहा था कि उसने देखा—लड़के और लड़कियाँ कागज खा रहे थे, पैंसिलें चबा रहे थे, स्याहियाँ पी रहे थे। एक तांगे में से सवारियाँ उतरीं और तांगे वाले ने सब सवारियों के बदन पर से पाँच-पाँच सात-सात बोटियाँ माँस की उतार लीं। एक स्त्री उसके पास से गुजरी, उसकी पीठ पर रक्त से भरी हुई पिचकारी मारकर अपने श्वेत दाँत दिखलाती हुई खिलखिलाकर हँस पड़ी। आधी रात को एक गली में चमकती हुई मोटर आकर खड़ी हो गई—सूटबूट पहने हुए उसमें से एक युवक निकला और नाली में से गटागट गन्दगी पीने लगा। कुलदीप ने देखा कि उस गली में और बहुत से युवक लेटे हुए गन्दी नालियों में मुँह लगाए हुए थे। एक खिड़की में से उसने कमरे के भीतर झाँका—एक छोटे से पलंग पर एक बच्चा सोया पड़ा था, उसके ऊपर एक पालने में एक और बच्चा सोया पड़ा था, उसके ऊपर एक और चारपाई पर माँ सोई पड़ी थी। चारपाई के ऊपर एक पलंग पर पिता सोया पड़ा था, और बड़े पलंग के सिरहाने की ओर एक तख्ता था, पानी की एक बाल्टी थी, साबुन की एक टिकिया थी। पायँत की ओर एक चूल्हा था, चूल्हे के समीप चिमटा था, एक बेलन था। पलंग की करवट में उतनी ही बड़ी शृङ्गारमेज़ थी, जिस पर रंग-बिरंगी लिपस्टिक पड़ी थीं, पाउडर पड़े थे, कंघियाँ थीं, ब्रुश थे, तेल थे, क्रीम थी, क्लिप थे, रिबन थे। पलंग के नीचे चारपाई पर स्त्री की सूखी-सी नंगी बाहें शृङ्गार मेज की ओर झूल रही थीं।

एक सड़क के किनारे कोई कबाड़ी वाला खिलौने बेच रहा था। एक खिलौना खरीदकर जब कुलदीप ने हाथ में पकड़ा, तो जीता-जागता एक बच्चा खिल[illegible]कर हँसने लगा। एक मन्दिर में 'कुसुंभड़े' के फूल बाँटे

जा रहे थे, एक मस्जिद में गिरगिट बाँटे जा रहे थे। एक दफ्तर में उसने देखा कि आँधी कागजों के पुलिन्दों को कभी एक ओर ले जाती और कभी दूसरी ओर जा फेंकती। दफ्तर में काम करने वाले सुर्खियाँ घोल रहे थे, सुरमा कूट रहे थे, रोटियों के डिब्बे चपरासियों से साफ करवा रहे थे।

होटल के एक कमरे के पास से गुज़रते हुए उसने सुना कि भीतर कुछ युवक एक बैरे को आर्डर दे रहे थे—"तीन प्लेट कबाब—दो बोतल शराब—एक लड़की, शरणार्थिन न हो!"

मुँडेरों पर बैठी हुई लड़कियाँ देखते-देखते जवान हो जातीं, जवान स्त्रियाँ बूढ़ी हो जातीं। बाजार में घूमती हुई स्त्रियाँ कपड़े पहने हुए होतीं, फिर भी नग्न दिखाई देतीं। बस! स्त्रियों ने सिरों पर टोकरियाँ उठाई हुई थीं। एक चुड़ैल अपनी हाथ-भर की जिह्वा निकालकर कुलदीप के पीछे पड़ गई—"मैं पोठोहारिन हूँ—" और वह उसके पीछे भागती जाए, भागती जाए! बाजार में से गुजरता, सड़कों पर दौड़ता, नदियाँ फाँदता, पहाड़ों को लाँघता, कुलदीप कहीं-से-कहीं निकल गया। वह लड़की अभी तक उसका पीछा कर रही थी!

कुलदीप हाँफता हुआ उठ बैठा, बाहर दिन निकला हुआ था, इतनी देर तक वह कभी नहीं सोया था। उसका सारा शरीर पसीने से तर था—दातुन करता हुआ कुलदीप सतभराई के तम्बू के समीप से गुज़रा, काला कुत्ता बाहर वैसे-का-वैसा बैठा था। नहाकर जब वह लौटा, तो फिर भी वह चक्कर काटकर उस तम्बू के पास से गुजरा, काला कुत्ता अभी तक वहीं बैठा था—

अभी तक सोकर नहीं उठी होगी—कुलदीप ने मन में सोचा!

लगभग आध घण्टे के बाद जब वह दूध देने के लिये आया, उसने देखा कि सतभराई तम्बू में नहीं थी। अड़ोस-पड़ोस से पूछने पर पता चला कि परमेसरी उसे मुँह-अँधेरे ही कहीं लेकर जा चुकी थी। सुनते ही कुलदीप को चक्कर आ गया। उसका सारा शरीर पसीने से भीग गया—उसके हाथ काँपने लगे। फिर उसके होठों पर एक फीकी-सी मुस्कराहट आई और वह

अपने काम में उलझ गया।

दोपहर को जब सतभराई लौटी, उसे ज्वर था। ज्वर बढ़ता गया, बढ़ता गया—उसके सिर को चढ़ गया! सतभराई की हाय-हाय सुनकर आसपास की स्त्रियाँ उसके तम्बू में इकट्ठी हुईं—

"पकड़ है"—एक बूढ़ी पोटोहारिन ने कहा।

"आन की आन में पकड़ कैसे हो गई, कोई छाया होगी!" एक स्त्री ने अपनी सम्मति दी।

"मैं कहती हूँ कि उस दुष्टा के साथ आज बाहर गई थी, कहीं उसी ने न कुछ कर दिया हो!" एक दूसरी पड़ोसिन ने परमेसरी की ओर संकेत करते हुए कहा।

फिर जितने मुँह उतनी बातें—प्रत्येक अपना-अपना अनुमान लगाती और कितनी देर तक उन्होंने तम्बू में काँय-काँय लगाए रक्खी, आखिर सतभराई की दशा और अधिक बिगड़ गई।

लाजो बार-बार हाथ मलती, सोचती—कहीं यदि अपना गाँव होता तो पुरियों के पीपल के गिर्द तीन चक्कर काटते, लड़की के मुँह पर पानी के छींटे मारते, और फिर यों मालूम होता जैसे हुआ ही कुछ नहीं था।

वन्ती कहती कि उनके गाँव की बड़ी मस्जिद् के मौलवी की झाड़फूँक बड़ी-से-बड़ी बीमारी काटकर रख देती थी।

'और हमारे गाँव की समाधि—और घण्टियों वाला फ़कीर!' सद्दो दुःख से हाथ मलती और बार-बार यह याद दिलाती कि 'जो कोई भी आशा वह अपने मन में लेकर गई, वह पूर्ण हुई और कभी खाली हाथ न लौटी! बस, समाधि पर माथा रगड़ा, पैसा-धेला एक साफ-सुथरे चीथड़े में बाँधकर समाधि पर झुके हुए बबूल के साथ लटकाया और सभी आशाएँ पूरी हुईं।'

हरदई के गाँव में एक 'ठंडा कुँआ' था, जिस पर हिन्दू, सिक्ख, मुसलमान सभी जाते। चाँदनी रात के रविवार को प्रातःकाल कुँए के गिर्द सात परिक्रमाएँ कीं, पानी पिया, बस सब दुःख जाते रहे। हरदई सदैव आश्चर्य किया करती थी कि उस कुँए से पानी सिक्ख भी निकालते थे और

मुसलमान भी, न कभी मुसलमान अपवित्र हुए थे न कभी हिन्दू !

जीतो कहती कि उसके बच्चों के मुँह पर जब कभी दाद निकल आती, 'फफरों' के गाँव का मौलवी कुछ ऐसा कलमा पढ़कर मुँह पर फूँकता कि उस दिन से दाद कम हो जानी आरम्भ हो जाती। मौलवी साहब के तावीज़ चौथे के बुखार के लिये सब परख चुकी थीं। दूर-दूर से लोग उससे 'जादू' उतरवाने के लिये आते।

'ठल्लियाँ' के गाँव वालों ने तो किसी हकीम या वैद्य का नाम भी नहीं सुना था। पेट-दर्द से लेकर तपेदिक तक का इलाज स्कूल का मौलवी किया करता था। किसी को मिट्टी फूँककर दे देता, किसी को कुछ पढ़कर नमक दे देता, किसी को 'हरल' की बूटी की दवा दे देता, मन की बात जान लेता, दिल की बात टोह लेता, पिछले जीवन का सब हाल बता देता, भविष्य का ज्योतिष लगाता। लोग सैयद साहब का नाम-सा लेकर जीते, क्या हिन्दू, क्या सिक्ख, क्या मुसलमान !

"यह क्या बातें लेकर बैठ गईं !" आखिर सतो बोली—"वह मौलवी, वह सैयद, वह समाधि, वह कुँआ, वह बबूल, सब कुछ अब पराया हो चुका है। अब तो सात बीसी नम्बर के तम्बू के पास पानी का तम्बू है, कहते हैं उसमें भी बड़ा चमत्कार है !" और फिर सतो ने बताना आरम्भ किया कि उसने एक दिन मुँह-अँधेरे देखा कि नल्के में से आरती की आवाज़ आ रही थी और फिर एक दिन सवेरे अपनी आँखों से उसने वहाँ देवी को नहाते हुए देखा था।

स्त्रियाँ इस प्रकार बातों में मग्न थीं और रोगिन को बिल्कुल भूल चुकी थीं। सतभराई का ज्वर बढ़कर एक जगह आकर रुक गया था, उसकी टिक-टिकी बँध गई थी, उसके माथे पर पसीना चमक आया था। उसके हाथ-पाँव ऐंठ गए जैसे मुड़ रहे हों।

ये स्त्रियाँ अपने-आप बातें कर रहीं थीं कि घबराया हुआ कुलदीप डॉक्टर को लेकर उधर आया, उसके कान में सतभराई की बीमारी की भनक पड़ गई थी।

डॉक्टर, नर्स, कुलदीप रात गए तक सतभराई की सेवा में लगे रहे, आखिर उसका ज्वर मन्द पड़ गया।

परमेसरी इसे अवश्य शहर की गन्दी गलियों में ले गई होगी—बार-बार कुलदीप के मन में यह विचार आता। परमेसरी चुड़ैल ने अवश्य इस पर कोई जादू कर दिया होगा—बार-बार उसे अनुभव होता। कुलदीप ने सुन रक्खा था कि शहरी, पान में कुछ डालकर दे देते हैं और खाने वाला बस मेमने की भाँति पीछे-पीछे घूमने लगता है—सतभराई ने अवश्य पान खाया होगा—उसे स्मरण हुआ कि परमेसरी ने उस रात पान खाया हुआ था।

फिर कुलदीप का मन चाहता कि यदि नर्स तनिक बाहर जाए तो वह सतभराई से पूछ ले कि उसने पान तो नहीं खाया था, किन्तु उसके होंठ पीले पड़ रहे थे; और कुलदीप को भय लगता कि यदि उसके पूछने पर सतभराई ने 'हाँ' करदी, तो फिर वह क्या करेगा। उसने सुन रक्खा था—पान में डालकर दिया हुआ जादू अंग-अंग में रच जाता है! यदि उसने सचमुच पान खा लिया है, तो फिर वह प्रतिदिन पान खाया करेगी।··· प्रतिदिन वह तम्बू खाली पड़ा रहा करेगा, परमेसरी की भाँति सवेरे मुँह-अँधेरे ही निकल जाया करेगी, रात गए घर लौटा करेगी—और फिर एक दिन लक्ष्मी के समान शहर की किसी गली में खो जाएगी, विलीन हो जाएगी!

कुलदीप ने अनुभव किया कि उसके हाथ पसीने से भीगे हुए थे—

१७

अप्रैल का पहला पक्ष बीत चुका था। बहुतों को कैम्प में आए हुए एक महीना होने लगा था, बहुतों को यहाँ आए हुए महीना बीत चुका था। मनमोहक बहार की महक से भरी हुई हवा अब नीरस-सी अनुभव होने लगी थी। दोपहर को लोग घनी छाया की खोज में रहते थे।

तम्बू दिन के समय तपने लग गए। पोटोहारनों के सिर पर से अब दुपट्टे सरलता से ढुलक जाते। जो मैनाएँ, फाखताएँ और चिड़ियाँ पहले कैम्प के गिर्द कंटीली तार पर बैठी रहतीं थीं, अब शहतूत के पेड़ों और शीशम के वृक्षों की घनी शाखाओं में छुपी रहतीं। बेरियों के बेर अब पीले पड़ने आरम्भ हो गए और छोटे-छोटे बच्चे उनसे चिमटे रहते।

सामने की जरनैली सड़क पर आजकल आवागमन बढ़ रहा था। साँझ-सवेरे ताँगों और साइकलों की आवाजें आतीं रहतीं। अब तो दूर कहीं गाए जाते हुए माहिये के गीतों के बोल शरणार्थियों के कानों में भी पड़ने लगे—

दो पत्तर अनारां दे!
सड़ गई जिन्दड़ी
लग गए ढेर
अंगारां दे!

छोटे-छोटे बच्चों ने नंगा रहना आरम्भ कर दिया। नलके के चारों ओर 'थापियों' की आवाज अब देर तक आती रहती, स्त्रियाँ मुँह-अँधेरे ही नहा लेतीं, और पुरुष जब कभी नल्का चल रहा होता, वहीं कपड़े किसी को पकड़ाकर उसके नीचे बैठ जाते। अमरीका एक दिन एक नल्का सँभालकर बैठ गया, बार-बार साबुन मलता और बार-बार नहाता, उसने रगड़-रगड़कर और मल-मलकर अपने सारे शरीर की मैल उतारी, नहाए जाता और साथ-ही-साथ गाए भी जाता।

अप्रैल का एक ऐसा ही दिवस था कि 'गर्जे', 'ठल्लियाँ', 'चौंतरे' 'टल्ले' 'अड्डियाले' के गाँवों के बहुत-से मुसलमान-चौधरी मिलकर कैम्प में आए। अपने गाँव के बचे-खुचे साथियों को गले लगा कर खूब रोए। मुसलमान पड़ोसियों से लाज के मारे आँख न उठाई जाती। वे अपने साथ घी के डोल भरकर लाए, सत्तू लाए, शहद लाए, बेरों की गठरियाँ बाँधकर लाए, घर के बुने हुए खेस लाए, तिल्ले से जड़ी हुई पोठोहारी जूतियाँ लाए। दिन-भर अपने गाँव वालों की अनुनय-विनय करते रहे कि वे वापिस अपने-अपने गाँव चलें।

सलामत शाह ने सत्तू घोला, वह घर की तैयार की हुई दूध ऐसी श्वेत शक्कर उसमें डालकर, 'कृष्ण सुदामा' की गाथा बार-बार याद दिलाता। बूढ़ा-खूँसट उसका मित्र महंगामल सारा समय उसके गले में बाहें डाले हुए बैठा रहा।

सात पर्दों में लिपटा हुआ 'जपजी साहब' का एक गुटका चौधरी इकबाल खाँ लाया और उसने अत्यन्त आग्रहपूर्वक सावनसिंह के हवाले कर दिया। वह बार-बार कसमें खाता कि जब से वह गुटका उसे मिला था, उसने कभी उसे अपवित्र-हाथ नहीं लगाए थे।

मुसलमान-मित्र कहते कि वे हिन्दू और सिक्खों के लिये दोबारा मकान बनवा देंगे, उनकी सारी सम्पत्ति उन्हें लौटा देंगे। उनकी फ़सलें वैसी-की-वैसी खड़ी थी, बल्कि वे अपनी फ़सलों में से भी उन्हें हिस्सा देने को तैयार थे।

फ़तेह मुहम्मद बार-बार आग्रह करता—"नाखून से माँस कभी अलग नहीं हुआ, भाई-भाइयों से लाख बार उलझ जाते हैं, बर्तन-बर्तन से टकरा जाता है।"

सलामत शाह कहता—"हमारी आँखों पर पट्टी बँध गई थी। हम चालाक लोगों के कहे में आ गए। हम बहुत शर्मिन्दा हैं।"

मुसलमान कहते—"अब उनके लिये दुकानें कौन चलाए? पैसे-पैसे के लिये उन्हें हाथ फैलाने पड़ते थे, अब आवश्यकता के समय वे कर्ज़ किस से लें? आगामी फ़सल के लिये वे बीज कहाँ से लेंगे? कई गाँवों में खत लिखने वाला अब कोई नहीं रहा था, कई गाँवों में अब समाचारपत्र पढ़कर सुनाने वाला कोई नहीं रहा था। कितने ही स्कूल अब बन्द हो चुके थे, कई डाकखाने वालों को अब डाक का कोई मुन्शी नहीं मिलता था।"

"चौतरे" गाँव की दोनों मुसलमान-पार्टियों में आजकल खींचातानी ज़ोर पकड़ गई थी। अब कोई ऐसा नहीं रहा था, जो बीच में पड़कर सुलह करवा दे। गत सप्ताह वे पिस्तौलों और बन्दूकों से लड़ पड़े और दोनों पक्षों को पुलिस पकड़कर ले गई। यह लड़ाई कितने वर्षों से चली आ रही थी, किन्तु ऐसा कभी नहीं हुआ था। सदैव हिन्दू-सिक्ख पड़ोसी बीच में आकर सुलह करवा दिया करते थे।

सलामत शाह के गाँव की पंचायत, जो कुआँ खुदवा रही थी उसका काम वहीं-का-वहीं रुका पड़ा था। आढ़त की कमेटी टूट-फूट गई थी, जो माल बाहर से आता था अब गाँव में उस माल को बिकवाने वाला कोई नहीं रहा था। चौपाल पर लोग कूड़ा फेंक देते, मरे हुए ढोर-डंगर छोड़ जाते। साँझ-सवेरे बच्चे वहाँ शौच के लिये आ जाते। गलियाँ मलबे और गन्दगी से भरी पड़ी थीं। किसी ने पहले कभी इतनी मक्खियाँ नहीं देखीं

थीं। जिन गाँवों में मच्छर का नाम नहीं सुना जाता था, अब मलेरिया के हाथों जकड़े हुए थे।

मजदूर कहते कि उनका रोजगार ही नहीं रहा था। उनसे अब काम लेने वाला कोई नहीं रहा था। मिस्तरी बेकार थे, मजदूर बेकार थे, लूट का माल जिस प्रकार आया था उसी प्रकार जा रहा था।

फज्जा जेलदार कसमें खाता—"मैं गाँव-गाँव जाकर लूट का माल निकाल लूँगा!"—उनके दालान वीरान हो गए थे, उनके गाँव उजड़ गए थे, उनकी गलियों में गहमा-गहमी नहीं रही थी—उनकी धरेकों और बरगदों की घनी छायाओं में सन्नाटा बरस रहा था।

फ़ौजदार ने अपने पड़ोसी-खत्रियों की कुतिया के बारे में बताया कि कैसे वह दिन भर हवेली के खण्डहरों का कोना-कोना पागलों के समान सूँघती रहती। जब फ़िसादी उस हवेली को आग लगाने के लिये आए तो कुतिया को पत्थरों से डराकर दूर भगा दिया गया। आग लगाकर जब फ़िसादी चले गए तो कुतिया हाँफती हुई फिर अपने दालान में आ पहुँची, चीखती रही, चिल्लाती रही। बार-बार लपटों में से गुजरकर उन कमरों में जाती, जहाँ उसके स्वामी रहा करते थे, और उन्हें ढूँढ़ती। आग लगी, आग भड़की, आग बुझ गई, लेकिन वह कुतिया उस दालान में से न हिली। शाम के समय जब उसका स्वामी उसे सैर के लिये ले जाया करता था, प्रतिदिन जोर-जोर से रोने लगती। पड़ोसियों ने उसकी आँखों में लाख-लाख आँसू देखे, न वह कुछ खाती न वह कुछ पीती। एक बेचैनी, एक लगन, एक खोज, एक तड़प उसे चैन न लेने देती। जब कोई पड़ोसी उसे आवाज देता, खाने के लिये कुछ देता—वह आकाश की ओर मुँह उठाकर रोना आरम्भ कर देती।

'पिस्ती' एक शिकारी कुतिया थी, उसकी माँ और उसकी माँ की माँ सभी उसके स्वामी के यहाँ ही रहीं थीं। बड़े-बड़े शिकारी पिस्ती की समझ-बूझ और शिकार की पहचान पर चकित होते। शिकार चाहे एक फर्लाङ्ग दूर हो, उसके कान खड़े हो जाते, वह विकल-सी हो जाती। हिरणों और

खरगोश इत्यादि को बड़ी चतुरता से घेर लेती। दौड़ती तो गोली के समान देखते-देखते कहीं-से-कहीं पहुँच जाती। उसने अपने घेरे में आया हुआ शिकार कभी बचकर नहीं निकलने दिया था। अँग्रेज शिकारियों ने उस कुतिया का हजार-हजार रुपया उसके स्वामी को पेश किया, किन्तु वह सदैव अस्वीकार कर दिया करता।

भूखी-प्यासी कुतिया प्रतिदिन अपने स्वामी की खोज में रहती। पत्थरों को उलटकर देखती, मलबे को कुरेदती; आखिर एक दिन सवेरे पड़ोसियों ने देखा कि वह हड्डियों का ढाँचा बनी हुई देहली पर सिर रखे बेजान पड़ी थी।

"हराम का माल—" फ़तेह मुहम्मद बार-बार कहता—"कभी किसी को नहीं पचा करता!" और एक-एक बदमाश को जिसने लूटखसूट की थी वह लाख-लाख गालियाँ देता। और उनके सम्बन्ध में प्रकृति के न्याय की विचित्र गाथाएँ सुनाता—

"चौधरी—जिसके घर में मारधाड़ के ढंग सोचे जाते रहे", फ़तेह मुहम्मद कहता—"वह आजकल अधरंग के कारण चारपाई पर पड़ा था। उसकी लड़की घर के नौकर के साथ मुँह-काला करके भाग गई थी, उसकी बहू को एक छोटी जाति के लड़के से प्यार हो गया था और बस आजकल में वह भी भागने वाली है—हर रोज उसके घर में तू-तू मैं-मैं होती रहती।

"जिस दिन से लूट का माल अन्दर आया था, उसके परिवार में न चैन से किसी को खाने को मिलता था न पहनने को—प्रतिदिन एक नया गुल खिल जाता है।

"क़ाजी—जिसने आदेश दिया था कि हिन्दुओं और सिक्खों को मारना और लूटना, उनकी बहू-बेटियों को अपमानित करना, आग लगाना पुण्य है, आजकल पागल हो गया था। गलियों में आवारा फिरता और ऊँची आवाज में गन्दी गालियाँ बकता है। कभी ख़ुदा को गालियाँ देने लगता है—उसने कान खींच-खींचकर लम्बे कर लिये थे, जहाँ कहीं पत्थर देखता नाक से लकीरें खींचने लगता। दिन-भर कुँए से जल निकालकर गुरुद्वारे के चबूतरे पर फेंकता रहता, कभी चबूतरे को मल-मलकर दोबारा उसे मलने लगता,

कहता कि यह लहू से लिथड़ा हुआ है।

"पोठोहार के कुँए बेकार पड़े थे, अब वहाँ वह पुरानी चहल-पहल नहीं थी; न अब वहाँ चितकबरे दुपट्टे आते थे। अब पोठोहारनों के शरीरों पर रंग-बिरंगी चुनरियाँ नहीं थीं, नौजवान लड़कियों पर एक मुर्दनी-सी छाई हुई थी। अब उन्हें दीवारों और कोठों से डर लगता था, आजकल दोबारा मौलवी पर्दे और बुरके की प्रथा चला रहे थे।

"...अनजले बच्चे; अधबुझे शहतीरों ऐसे युवक, अपमानित करके काटी और नोची हुई लड़कियाँ, आग में जलाए गए बूढ़े, पोठोहार की धरती पर टोलियाँ बनाकर आवारा फिर रहे थे, वे शाम को खँडहरों में से निकल आते, पीपल के तले से फूट पड़ते, और अब वे भूत-प्रेत दिखाई देने लगे थे। सोए हुए बच्चे बुड़बुड़ाकर उठते और रोने लगते, स्त्रियाँ चीखने लग पड़तीं, पुरुष कुहराम मचा देते।

"चोरियाँ बढ़ रहीं थीं, डाके और अधिक बढ़ने लगे थे। बात-बात पर लोग एक-दूसरे को कत्ल करने के लिये लपकते थे। न आँख की लाज रही थी और न किसी को किसी से लगाव रहा था, हर किसी ने हर किसी को नंगा देख लिया था। चोरियों की कुछ ऐसी चाट-सी पड़ गई थी, छुवियों ने कुछ ऐसे हाथ से खोल दिये थे कि कोई किसी स्थान पर अपने-आपको सुरक्षित नहीं समझ सकता था।"

मुसलमान चौधरियों ने बड़ी अनुनय-विनय की लेकिन जब तक सरकार की आज्ञा न होती, लोग कैसे वापिस जा सकते थे! लोगों के गले लग-लगकर, आँसू गिरा-गिराकर, ठंडी साँस भर-भरके, पुराने प्यार की बातें याद कर-करके आखिर वे लौट चले। एक-दूसरे को दुआएँ देते, एक-दूसरे के लिये दुआएँ माँगते!

१८

मुस्लिम लीग का एक नेता रावलपिण्डी शहर में आया हुआ था, वह बहुत बड़ा नेता था। क़ायदे-आज़म मुहम्मद अली जिन्ना ने उसे स्वयं भेजा था, बहुत-सी जगहों पर उसने क़ायदे-आज़म के सन्देश पढ़कर सुनाए; एक विशेष सन्देश, जो उन्होंने पोठोहार के नाम भिजवा दिया था, उसे भी हर समय पर दुहराया गया।

मुस्लिम लीग का यह नेता शरणार्थी-कैम्प देखने के लिये भी आया, भाषण देते हुए उसने कहा—"हमारी माँग है, पाकिस्तान—हम पाकिस्तान लेकर रहेंगे, पाकिस्तान हमारा पैदायशी-हक है! हिन्दुस्तान के मुसलमानों का यह एक अटल फैसला है, लेकिन उसका यह मतलब नहीं कि पाकिस्तान में कोई हिन्दू या सिक्ख रह नहीं सकता। इसका यह मतलब नहीं कि हिन्दुस्तान के सभी मुसलमान अपने घर छोड़कर पाकिस्तान में आ बसें, पाकिस्तान एक आज़ाद रियासत होगी जैसी कि हिन्दुस्तान है—अँग्रेज दोनों मुल्कों में से चला जाएगा, हम जैसे भी चाहेंगे अपने-आप पर आप हकूमत करेंगे!

"पाकिस्तान एक इस्लामी मुल्क होगा, लेकिन इस्लाम हमें यह नहीं सिखाता कि हम एक-दूसरे मज़हब के लोगों पर हमला करें, दूसरे मज़हब की औरतों की बेइज़्ज़ती करें, दूसरे मज़हब के बच्चों पर ज़ुल्म करें।

"हमारे मुल्क में अकबर जैसे शहनशाहों ने हकूमत की है, जिनके नगर में हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं था। हमारे मुल्क में महाराजा रणजीतसिंह ने राज किया है जिसका वज़ीरेआज़म एक मुसलमान था; शेरे-पंजाब की फौज के सिपाही मुसलमान थे और बाग़ी मुसलमानों की बग़ावत दबाने के लिये वे मुसलमान अफ़सरों की कमान में ही फ़ौजें भेजा करते थे। जहाँ महाराजा रणजीतसिंह ने गुरुद्वारों के नाम जायदाद लगवाई थी, वहाँ मस्जिदों के लिये भी लाखों रुपये लगाए थे।

"हमारे सामने अनगिनत ऐसी मिसालें हैं—इन्साफ, रवादारी और प्यार की मिसालें! हमें डरना और घबराना नहीं चाहिए। तुम्हारे घर तुम्हारे अपने हैं, अपने घर को कोई नहीं छोड़ सकता, भाई अपने भाइयों से नहीं बिछुड़ सकते—चोली से दामन जिस प्रकार कभी अलग नहीं होता। बर्तन-से-बर्तन टकरा के खनक ही पड़ता है।

"जो कुछ भी हुआ, उसके लिये सब शर्मिन्दा हैं। जो कुछ भी हुआ उससे हमें सबक सीखना चाहिए। मुस्लिम-लीग, जो हिन्दुस्तान के मुसलमानों की सबसे बड़ी जमात है, मैं उसके एक रुक्न की हैसियत में सब हिन्दू-सिक्ख भाइयों को यकीन दिलाता हूँ कि हमारा ऐसा कोई इरादा नहीं कि हिन्दू-सिक्खों से ज़्यादती करें? हमारी जंग पहले अँग्रेज़ से थी और अब जब कि अँग्रेज ने चले जाने का फैसला किया है, हम पाकिस्तान के लिये जद्दोजहद कर रहे हैं, हमें खासी कामयाबी हो रही है, मुसलमानों का मुस्तक़बिल शानदार दिखाई दे रहा है। एक सुखी मुल्क और एक खाती-पीती कौम कभी वहशियों-जैसी कोई हरकात नहीं करती। जिन लोगों का नेता इतना खूबसूरत हो, वे लोग ओछे हथियार नहीं इस्तेमाल करते। हमारा मज़हब किसी से दुश्मनी रखना नहीं सिखाता, हमारी कौम का लीडर क़ायदे-आज़म हमें अमन का पैग़ाम देता है, जिस मुल्क में अमनो-अमान

नहीं, वह मुल्क भला क्या मुल्क हुआ ? हमें पाकिस्तान बनाना है। पाकिस्तान की नींवें उसी वक्त मजबूत होंगी जब यहाँ के लोग खुशहाल हों, जब यहाँ के लोग सुख-चैन से जिन्दगी बसर कर सकें।

"मुझे अपने हिन्दू-सिक्ख भाइयों से एक सवाल पूछना है—अगर हम सब मिलकर अँग्रेज के राज में जी सकते थे, व्यापार कर सकते थे तो मुसलमान ही तुम्हें क्यों बुरे लगते हैं ? पाकिस्तान में हिन्दू-सिक्ख उसी तरह रहेंगे जिस तरह करोड़ों मुसलमान हिन्दुस्तान में रहेंगे, जियेंगे और मरेंगे।

"आखिर में मेरी आपसे यही अपील है कि हिन्दू-सिक्ख भाई वापिस अपने घरों को चले जाएँ। हमें जो लोग लड़ाना चाहते हैं उनकी बातों में हमें नहीं आना चाहिए, हमें खुद अपना नफ़ा-नुकसान देखना चाहिए, जो कुछ हो चुका सो हो चुका, अब हमें पुरानी बातों को भूलकर हँसी-खुशी पड़ोसियों की तरह रहना चाहिए।"

और फिर तालियाँ बजाई गईं, फिर "पाकिस्तान जिन्दाबाद" के नारे लगाए गए, फिर "क़ायदे-आज़म जिन्दाबाद" का नारा गुँजाया गया—

इधर मुस्लिम-लीग का नेता हिन्दू और सिक्खों को न्याय का वचन दे रहा था और उधर डोगरा पल्टन में यह सूचना आई कि बड़ी मस्जिद में डेढ़ सौ हिन्दू-सिक्ख, पुरुष, स्त्रियों और बालकों को बलपूर्वक मुसलमान बनाया जा रहा है। उन्हें बन्द लारियों में इकट्ठा करके गाँव से लाया गया था और पिछले दो दिनों से उन्हें तंग किया जा रहा था।

डोगरा पल्टन के जवान जिनकी ड्यूटी शहर की देख-भाल नियत हुई थी, दौड़कर बड़ी मस्जिद में पहुँचे। वे अभी दूर ही थे कि उन्होंने गोलियाँ बरसानी आरम्भ कर दीं, पुलिस की समझ में कुछ भी नहीं आ रहा था। पलक झपकते मिलिट्री के जवानों ने बड़ी मस्जिद को घेरे में ले लिया। गोलियाँ चलाते और संगीनें चलाते कुछ लोग मस्जिद के भीतर जा घुसे। वे हिन्दू-सिक्ख पुरुष, स्त्रियों और बच्चों को बाहर निकाल लाए।

सारे शहर में कुहराम मच गया, फिर बाजार बन्द होने लगे, फिर छुरेबाजी आरम्भ हो गई, मुस्लिम-लीग का नेता जाने कब हवाई जहाज में

बैठकर दिल्ली जा चुका था।

जो लोग बड़ी मस्जिद में से निकाले गए उन्हें भी शरणार्थी-कैम्प में लाया गया, सिक्खों की दाढ़ियाँ मुँडी हुई थीं, बाल कटे हुए थे। सिक्ख-स्त्रियों की दृष्टि ऊपर नहीं उठ सकती थी, सिक्ख बच्चों के सिरों पर केश नहीं थे।

शरणार्थी-कैम्प में एक बार और कुहराम मच गया, फिर लोगों ने रो-रोकर एक-दूसरे को पहचानना आरम्भ कर दिया और फिर दूर-दूर के सम्बन्धी निकलने लगे, फिर प्रत्येक अपनी आपबीती सुनाने लगा—

नये आए हुए पीड़ितों ने बताया कि कैसे गोमांस प्रतिदिन उनके सामने पकाया जाता और कैसे प्रतिदिन उन्हें खाने के लिये विवश किया जाता। कैसे बड़ी-बड़ी हड्डियों को उनके मुँह में दिया जाता, कैसे उन्हें नमाज़ पढ़नी सिखलाई गई। कैसे बच्चों की, जवानों की और बूढ़ों की 'सुन्नत' की गई, उन सबके नए नाम रक्खे गए—इस्लामी नाम। और कभी वे परस्पर भी यदि एक-दूसरे को पुराने नाम से पुकार बैठते तो फ़िसादी छुरे निकाल-निकालकर उन्हें दिखाते, नेजे लहराते।

अधेड़ आयु की बूढ़ी स्त्रियों ने बताया कि कैसे नौजवान लड़कियों से फ़िसादियों ने विवाह कर लिया था। कैसे एक-एक घर में तीन-तीन लड़कियाँ बिठा दी गईं, किस प्रकार चोरी-छिपे वे कूँजों के समान आँसू बहातीं, और कैसे बिछुड़े हुए सम्बन्धियों को याद करतीं और उन्होंने कैसे नये-नये गीत सीख लिये थे—

"बाबला, यह कौन-सा वर मुझे दिया है!"

जो कोई भी उनकी कहानी सुनता बिलबिला उठता—

कैसे किसी 'सतो' ने भागने का प्रयत्न किया तो उसे गोली से उड़ा दिया गया, कैसे 'वीरां' को छत से उल्टा लटकाकर वश में किया गया, कैसे 'बसन्ती' गुण्डों के हत्थे चढ़ गई और एक दिन एक ग़ार में अधमुँई पड़ी पाई गई।

कैसे नये-नये बनाए हुए मुसलमान बच्चों से प्रतिदिन गलियों में

"पाकिस्तान जिन्दाबाद" कहलवाया जाता। कैसे इस्लाम की प्रशंसा में स्त्रियों से गीत गाने के लिये कहा जाता कि जैसे उनके साथ कोई अत्याचार नहीं हुआ था, वे अपने घरों में प्रसन्न थीं और इस्लाम स्वीकार करके स्वर्ग के द्वार उनके लिये खुल चुके थे!

नये आने वाले शरणार्थियों ने बताया कि गुरुद्वारों और मन्दिरों को या तो बूचड़खाना बना दिया गया था अथवा उनमें तम्बाकू की दुकानें खुल गई थीं। उसमें से कई एक में जान-बूझकर भंगियों अथवा नीच जाति के लोगों को बसा दिया गया था।

महात्मा गाँधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू और मास्टर तारासिंह के कई बार नकली जनाज़े निकाले गए और नये बनाए हुए मुसलमानों को आदेश दिया गया कि प्रातःकाल उठकर कायदे-आज़म के चित्र को झुककर सलाम किया करें।

'टाहली मूहरी' वाली गोबिन्दी को 'डल्लियाँ' वाला शेरा निकालकर ले गया। गोबिन्दी के यौवन और शरीर को जो कोई देखता, उसके हाथ में यदि छुरा होता तो छुरा गिर पड़ता, जो नेज़ा होता तो नेज़ा उसके हाथों से फिसल जाता। लोग लूट का माल छोड़-छोड़कर गोबिन्दी के पीछे भागते। शेरे के कई साँझी बन गए। कितनी देर तो शेरा हकलाता रहा और टालता रहा, किन्तु जब दूसरे उसके सिर हो गए और परस्पर जूत पुतौवल हो गई तो गोबिन्दी सामने खड़ी यह देखती रही, फ़िसादी परस्पर झगड़ते हुए एक-दूसरे को मारने-काटने लगे और देखते-ही-देखते सारे-के-सारे वहीं ढेर हो गए।

लूट के माल की बाँट पर अभी तक झगड़े हो रहे थे, कुत्तों के समान छीना-झपटी होती। कई बार पोठोहार की गलियों में स्त्रियों ने लूट के खत्रियों के से पहने हुए कपड़े चीथड़े-चीथड़े कर दिये गए थे। प्रत्येक को पता था कि अमुक घर में क्या-क्या कुछ है, और यदि कोई एक कतरन भी बेकार निकल आती तो मोहल्ले की स्त्रियाँ ज़्यादती करने वाली पर टूट पड़तीं।

मीरासनें रेशम पहनतीं, छोटी जाति की स्त्रियाँ रेशमी दुपट्टे ओढ़े गन्दगी साफ़ करतीं, क़ीमती-से-क़ीमती कालीन काटकर जाटों ने पशुओं के झोल बनाए। मेजों और कुर्सियों से ईंधन का काम लिया जाता। हिन्दुओं और सिक्खों के ढोर-डंगरों को काटा गया, और लोग नये पशुओं की खोज में रहते।

जब नये आए हुए शरणार्थी इस प्रकार की कहानियाँ सुना रहे थे तो उनके कैम्प के ऊपर से एक हवाई-जहाज गुजर रहा था जिसमें हिन्दुस्तान की सारी फौज का मालिक एक सिक्ख-सरदार बैठा हुआ था, जिसमें सारे हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा मन्त्री, एक अत्यन्त कोमल हृदय रखने वाला देवता बैठा हुआ था, जिसमें सारे हिन्दुस्तान के कोष का अध्यक्ष, एक पढ़ा-लिखा कुलीन नवाब बैठा था; जिसे कभी किसी ने ऊँची आवाज़ में वार्त्तालाप करते नहीं सुना था।

और ये सब ऐसे महसूस कर रहे थे जैसे एक-दूसरे से शर्मिन्दे हों। चुपके-चुपके अपने समाचारपत्र पढ़ने का प्रयत्न करते किन्तु उनसे उनका जी न बहलता।

१६

सतभराई कितने दिनों से बीमार थी ! पहले तो वह ज्वर का सामना करती रही, किन्तु अब उसे अनुभव होता जैसे वह बहुत दुर्बल हो गई है।

कुलदीप दोनों समय उसे देखने के लिए आता, हस्पताल से दवा भी ले आता और उसका जो कोई छोटा-बड़ा काम होता वह भी कर जाता। आजकल कैम्प के बीमारों की सेवा उसके जिम्मे थी।

छाया ढलकर जब उस तम्बू के खूँटे के समीप पहुँचा करती थी, कुलदीप उसी समय आया करता था—शाम को प्रतिदिन ! इधर छाया वहाँ पहुँचे, उधर फाटक का सन्तरी पाँच बजे का घड़ियाल बजाता और उस समय उत्साह से डग भरता कुलदीप आ पहुँचता। कभी उसके हाथ में दवा होती, कभी उसके हाथ खाली होते।

आज छाया थी कि जैसे सो गई हो ! चलने ही में न आती, और सतभराई सोचती कि वह क्यों व्याकुल हो रही थी। क्यों बार-बार उसका मन चाहता कि वह यह देखे—छाया खूँटे से कितनी दूर थी। अभी तो

बाहर दोपहर थी, पहले छाया खाई को पार करेगी, फिर टूटे हुए गमले को फाँद जायगी, फिर कहीं जाकर खूँटा आयगा।

और तम्बू के द्वार की ओर पीठ करके सतभराई लेट गई। चुपचाप लेटे हुए सहसा उसकी आँखों से छम-छम करते हुए आँसू गिरने लगे, वह रोती रही, रोती रही। फिर उसे ऐसे अनुभव हुआ जैसे किसी की पदचाप उसे सुनाई दे रही हो—सरलता से अपनी आँखें पोंछते हुए उसने पीछे मुड़कर देखा, कोई भी तो नहीं था। छाया वैसी-की-वैसी थी जैसे पथरा गई हो, उससे अभी तक खाई नहीं फाँदी गई थी।

पहले खाई फाँदी जायगी, फिर टूटा हुआ गमला, और फिर उस खूँटे तक छाया पहुँच जायगी···और फाटक पर घड़ियाल बजेगा—फिर तेज़-तेज डग भरता हुआ कोई आयगा···तम्बू में आजकल कितनी हुमस थी, काश कोई ठंडी-सी वस्तु हो, 'सुहाँ' की गीली रेत ऐसी! धमियाल के 'पुरियों' के कुएँ ऐसी, धरेक की सघन छाया ऐसी—सतभराई सोचती रहती, सोचती रहती, उसका दिल चाहता कि ठंडे पानी का कोई हौज हो और वह उसमें खो जाए। सावन की नन्हीं-नन्हीं फुहार पड़ रही हो, और वह सिर तक ऊँची खेत की फ़सल में खो जाय। बेरों से लदी हुई किसी बेरी में वह खो जाए और लोग उसे ढूँढते रहें, ढूँढते रहें।

उसका जी क्यों चाहता था कि छाया खूँटे तक पहुँच जाए? सतभराई को अपने-आपसे डर लगता; सोहणेशाह जब लौटेगा तो वह उसे क्या मुँह दिखायगी? राजकर्णी को यदि पता लग जाए तो वह उससे क्या कहेगी? अड़ोस-पड़ोस के तम्बू वाले क्या कहेंगे?

आज जब वह आयगा, वह सोचती—तो वह उसकी ओर आँख उठाकर नहीं देखेगी, उसकी आँखों में न जाने क्या था? उसके होठों से जैसे हर घड़ी शहद टपकता रहता है! उसका चेहरा कितना अच्छा था जैसे उसमें कोई चुम्बक-शक्ति भरी हुई हो!

और सतभराई हाथ फैला-फैलाकर दुआ करती कि आज कोई पड़ोसिन उसे देखने के लिए आ जाए···कुलदीप जब अकेला आयगा—वह

सोचती और उसका रोम-रोम काँपने लगता, उसे अप-आपसे डर लगने लगता।

दूर''सामने के तम्बू में से निकलकर परमेसरी लपकती हुई आ रही थी—

परमेसरी को देखकर जैसे सतभराई के होश उड़ गए, जैसे बिजली गिरी हो। उसकी आँखों-तले अँधेरा छा गया। वह पल-भर में सिर से पाँव तक पसीना-पसीना हो गई—

"या रब, यह न आए,। या रब, यह न आए!" उसका अंग-अंग फ़रियाद कर रहा था; परमेसरी यदि आ गई तो वह उठने का नाम भी नहीं लेगी।

और कुलदीप आएगा—अब तो छाया टूटे हुए गमले को फाँद रही थी, और कुलदीप आएगा—परमेसरी यहाँ धरना देकर बैठी होगी, उससे लतर-लतर बातें करती रहेगी, और फिर उसके जाने का समय हो जायगा। उसने और भी तो बहुत से काम करने होते हैं।

तेज-तेज डग भरती परमेसरी सामने आ रही थी—

"या रब, इस चुड़ैल को उधर ही रखियो, या रब, इस दुष्टा से मुझे बचाइयो!" सतभराई अपने-आप को कोसने लगी कि उसने यह क्यों सोचा था कि कोई आ जाए। वह तो चाहती थी कि कोई न हो, सारी दुनिया में कोई न हो, केवल वह हो और कुलदीप हो, एक बीहड़ हो, एक दरिया का सूना किनारा हो, एक अँधेरी रात हो जहाँ कोई आवाज़ न आ रही हो, जहाँ तारे भी न झाँक सकें, जहाँ सूरज की किरणें तक न पहुँच सकें!

परमेसरी सामने की सड़क मुड़कर किसी दूसरे तम्बू में घुस गई, सतभराई की जान-में-जान आई, जैसे वह स्वर्ग में पहुँच गई हो।

किन्तु क्षण-भर बाद उसे अपने-आप से डर लगने लगा। छाया ज्यों-ज्यों खूँटे के समीप पहुँचती, उसके हृदय में एक चुभन-सी एक टीस-सी होती, उसके शरीर का सारा रक्त जैसे निचोड़ लिया गया हो।

अब छाया खूँटे तक पहुँच जाएगी, अब बड़े फाटक का सन्तरी पाँच

श्रजायगा। और फिर तेज-तेज कदम रखता हुआ वह तम्बू में दाखिल होगा। कुलदीप के नयन न जाने क्या-क्या कुछ कहते थे; वह जब समीप होता तो सतभराई के अंग-अंग को न जाने क्या-क्या कुछ हो जाता! उसे यों अनुभव होता जैसे वह कोई सपना देख रही हो। उसके तम्बू में एक महक-सी फैल जाती।

कुलदीप आज उसके सिरहाने आके बैठ जायगा, कल स्वयं ही तो उसने उसे वहाँ बैठने के लिए कहा था, वह प्रतिदिन आकर खड़ा रहता और खड़े-खड़े चला जाता था। उसके तम्बू में न कोई कुर्सी थी न कोई और वस्तु, वह उसके सिरहाने न बैठता तो और कहाँ बैठता। फिर उसने वहाँ बैठने के लिए साफ-साफ से थोड़ा ही कहा था; उसने तो बस अपनी ओर देखा था अपने मन में यह कामना लेकर, उसने तो उसे केवल सिर से पाँव तक देखा था और फिर तकिये के पास खाली पड़ी उसने जगह की ओर देखा था। पहले वह ,तकिए के साथ लगकर खड़ा रहा, खड़े-खड़े फिर उसने वहाँ घुटना टेक दिया; और जब वह थर्मामीटर उसके मुँह से निकालने लगा था तो वह बैठ गया था। न उसमें कोई सतभराई का दोष था और न कुलदीप की इसमें कोई ज्यादती थी। जैसे पेड़ से लगा कोई फल पक जाता है, इसी प्रकार प्रतिदिन खड़े रह-रहकर कुलदीप बैठ गया था।

फिर क्या हुआ यदि वह वहाँ बैठ गया था! कुलदीप उसे बीबी-बीबी कहकर बुलाता था, कुलदीप जिसका कैम्प में सभी सम्मान करते थे, कुलदीप जिसकी हर जगह चर्चा होती और सब उसके सेवभाव, उसकी सरलता की प्रशंसा करते, कुलदीप जिसका कोई कहा नहीं टालता था—क्या शरणार्थी, क्या कैम्प के अधिकारी! कुलदीप जो रात-दिन अपने काम में लगा रहता था।

किन्तु उसे इस बात की क्यों आशंका थी कि कोई कुलदीप को उसके पास बैठा हुआ न देख ले, उसके मन में अवश्य कोई चोर था। वह कोई दुष्कर्म कर रही थी? अभी तक उसके मन में किसी बुरी बात के लिए

अभिलाषा नहीं जगी थी; आखिर यह सब-कुछ क्यों? बार-बार उसकी दृष्टि सामने खूँटे पर जा टिकती—उसका हृदय क्यों व्याकुल था? उसका दिल क्यों चाहता था कि वह उस छाया को कोसती चली जाए—जैसे जम-कर रह गई हो, उसमें गति ही नहीं रही थी!

"मैं किस रौ में बहती चली जा रही हूँ?" आखिर सतभराई ने अपने-आप से प्रश्न किया और उसके आँख से टप्-टप् आँसू गिरने लगे।

सतभराई ने सोचा कि वह इस प्रकार इसीलिये सोच रही थी, क्योंकि वह अकेली थी, वह कोई सहारा ढूँढ रही थी, वह किसी साथ की खोज में थी। उसे एकान्त में अपने-आपसे भय लगता था, उसका हृदय कह रहा था कि सोहणेशाह अवश्य आएगा, उसे ऐसे छोड़कर नहीं जा सकता था, कहीं रुक गया होगा, कहीं उलझ गया होगा, सम्भवतः राजकर्णी को ढूँढ रहा था।

और जब सोहणेशाह आ जाएगा तो वह अपने भेद को उससे कैसे छिपा सकेगी, और उसके होते जब कुलदीप आएगा तो वह कहाँ बैठेगा? दूर बैठा हुआ सोहणेशाह यदि कुलदीप को उसके सिरहाने बैठा हुआ देख रहा हो—कैम्प वाले क्या कहेंगे, यह लड़की कैसी है? अड़ोस-पड़ोस में क्या-क्या बातें होंगी? परमेसरी उसे संसार में बदनाम कर आएगी।

छाया सामने खूँटे तक पहुँच गई थी। बड़े फाटक का घड़ियाल एक, दो, तीन, चार, पाँच बजा रहा था।

अभी आ जाएगा, तेज-तेज डग भरता हुआ, उसे किस प्रकार जल्दी होती थी; यदि कुछ समय के लिये कल तनिक और बैठता! काश, वह सतभराई से पूछे कि वह कौन है, कहाँ से आई है, क्या-क्या कष्ट उसने झेले हैं? काश! कभी वह अपने सम्बन्ध में ही कुछ बताए, कहाँ से कौन से गाँव से वह उजड़कर आया था। सतभराई को ऐसे अनुभव होता कि कुलदीप की काली आँखों ने बहुतों को घायल कर दिया होगा, बहुतों के दिलों की बुराई को धो दिया होगा, उन्हें पवित्र कर दिया होगा!

पाँच बज चुके थे, किन्तु कुलदीप नहीं आया था। छाया खूँटे को भी

पार कर चुकी थी—

"हाय ! तुम शीघ्र क्यों नहीं आते ?" सतभराई व्याकुल हो रही थी।

शायद वह आज नहीं आएगा, आज उसकी ड्यूटी और कहीं लगी होगी। अभी आ जाएगा, यूँ ही कभी देर हो जाया करती है, किन्तु कहीं कल की बात पर वह नाराज न हो गया हो, और यदि वह आज न आया ! वह कहीं यदि कैम्प ही छोड़कर चला गया, कोई अन्य रोगी अधिक बीमार हो गया होगा; शायद किसी दूसरी लड़की के माथे पर वह पानी से भिगो-भिगोकर पट्टी रख रहा होगा, उसकी नब्ज देख रहा होगा। यदि उसकी ड्यूटी कपड़े बाँटने की हुई तो उस तम्बू के आगे सदा भीड़ लगी रहती है। नहीं, उसकी ड्यूटी राशन बाँटने की होगी, दिन-रात जहाँ वस्तुएँ तुलती रहती हैं—

"हाय ! मुझ अभागिन ने यह क्यों सोचा था कि या रब वह आज न आए !" सतभराई फिर अपने-आपको कोसने लगी—

किसी समय की कही हुई बात ईश्वर तत्काल सुन लेता है—यदि वह आज न आया···यदि वह आज न आया···यदि वह आज न आया— सतभराई के कपोल लाल सुर्ख हो गए, उसकी आँखों से आँसू फूट निकले, कितनी देर तक वह मोती लुटाती रही।

छाया कहीं-से-कहीं जा चुकी थी, किन्तु वह अभी तक नहीं आया था—

सम्भवतः इसी बात में भला हो कि वह आज न आए, आज यदि वह आ जाता···

और सतभराई को यों अनुभव होता, जैसे पहाड़ की चोटी से फिसलती हुई वह खड्ड में जा पड़ी हो, एक खाई में जहाँ अन्धकार-ही-अन्धकार हो ! दलदल और कीचड़ में जैसे वह लिपटी जा रही हो, जैसे उसका अंग-अंग मिट्टी में लिथड़ा जा रहा हो !

और कुलदीप उसे ढूँढ रहा था, ढूँढे जा रहा था। दूर···बहुत दूर पहाड़ियों की चोटियों पर···आस्मान में जहाँ सतभराई की आवाज तक नहीं पहुँच सकती, और सतभराई थक चुकी है उसे पुकार-पुकारकर, संकेत

कर-करके, वह उसकी प्रतीक्षा किये जा रही थी।

छाया ढल रही थी, ढलती जा रही थी—

वह आएगा, वह नहीं आएगा, वह आएगा, वह नहीं आएगा; जिसकी प्रतीक्षा हो वह कभी नहीं आया करता।

सतभराई ने सड़क की ओर मुँह फेर लिया, और आन-की-आन में उसके सिरहाने का कोना भीग गया।

२०

कैम्प का राशन-डिपो अक्सर चार बजे बन्द हो जाता। पहले दस से एक तक और उसके बाद चार से छः बजे तक कुलदीप हस्पताल वालों की सहायता करता।

आज किसी बड़े नेता ने कैम्प देखने आना था, इसलिये कुलदीप को न तो दोपहर को एक से दो बजे तक आराम करना मिला, न राशन-डिपो बन्द किया गया। पता नहीं, नेता किस समय आ जाय!

और अब पाँच बज चुके थे!

आज सवेरे पहले कुलदीप को दूध बाँटने के काम पर लगाया गया। लेडी डॉक्टर, बच्चों और बीमारों के लिये दूध की सिफारिश लिख देती और कुलदीप जितना दूध चिट्ठी में लिखा होता दिये जाता। बूढ़ों के लिये दूध का कोई प्रबन्ध नहीं था; कुलदीप की यह भी ड्यूटी थी कि जो बूढ़े लेडी-डॉक्टर के गिर्द हो जाएँ तो वह उन्हें डाँट-डपटकर और समझा-बुझाकर लौटा दे!

एक बूढ़े का दिमाग़ खराब था—

"मेरी बच्ची, मेरी बेटी, ईश्वर तुझे सात बच्चे दे!"—बेचारे को क्या पता कि लेडी डॉक्टर अभी कँवारी थी, और आजकल लड़कियाँ एक या दो, इससे अधिक सन्तान को मुसीबत समझती हैं!

एक और बूढ़ा था जिसने सारी उम्र गाँव से बाहर पैर नहीं रक्खा था—

"रानी चिड़िया! तेरा सौभाग्य बना रहे, तुम्हारा जोड़ा सुखी रहे!" कुलदीप और लेडी डॉक्टर को पास-पास बैठा हुआ देखकर वह न जाने क्या-क्या अनुमान लगाया करता था, और लाज के मारे कुलदीप का चेहरा तमतमा उठता—लेडी डॉक्टर भी मुस्कराती रहती।

कभी झुँझलाकर कुलदीप बूढ़ों से कहा करता कि तुम मर नहीं जाते, तुम बच्चों और रोगियों के हिस्से का दूध आकर पीते हो, अब तुम्हारी किसी को क्या आवश्यकता है?

और बूढ़ों को यह सुनकर बड़ा क्रोध आता, वे सब को लाख-लाख धिक्कारते। गुलाब, जिसका इस गड़बड़ में दिमाग खराब हो गया था कुलदीप को लालच देने लग जाता:—

"सुन, जिस दिन मेरी पत्नी मुझे मिल गई···" और वह प्रत्येक को वचन देता कि वह अपनी आधी सम्पत्ति उसे दे देगा। गुलाब अपने गाँव के प्राइमरी स्कूल में अध्यापक था। उसके गाँव पर जब आक्रमण हुआ उसकी पत्नी ने अपना सारा जेवर निकालकर पहन लिया; जितना रुपया अन्दर रक्खा हुआ था, उसे भी अपने नेफ़े में डाल लिया—और वह उसके स्कूल के मौलवी की अंगुली पकड़े हुए उसके देखते-देखते फ़िसादियों की भीड़ चीरती हुई कहीं चली गई। फिर गुलाबे को याद आया कि जभी वह मौलवी को दही पिलाया करती थी; जब कभी गुलाबा बाहर गया होता और घर लौटता, तो मौलवी उसके घर में बैठा उसकी प्रतीक्षा कर रहा होता। जभी वह गुलाबे को एक मौलवी की-सी तुर्रे वाली पगड़ी बाँधने को कहा करती थी, जभी तो छोटा मौलवी उसे पढ़ाने के लिए उसके घर

आया करता था। उस समय गुलाबा प्राइमरी स्कूल का उस्ताद, डाक का काम निबटाया करता था कि उसे आठ रुपये मासिक अधिक मिल जाएँ। जभी तो एक रात कभी दो रात के लिए यदि उसे बाहर रहना पड़ता तो उसकी पत्नी को कभी भय नहीं लगता था; न कभी किसी मोहल्ले वाले के घर जाकर सोया करती और न किसी मोहल्ले वाले को अपने घर बुलाया करती—जभी तो वह 'चूरी' बनाया करती थी, जभी तो उसके घर में घी का खर्च दुगना हो गया था, जभी तो कढ़े हुए दूध की मलाई उसे कभी नहीं मिला करती थी! जभी तो पिछले दिनों छोटा मौलवी बीमार पड़ गया था तो उसने मन्दिर जाना आरम्भ कर दिया था! बात-बात पर झुँभला उठती, न उसे खाना अच्छा लगता न पीना; जभी तो पिछले छः महीनों से उसने कभी मायके जाने का नाम नहीं लिया था। जभी उसके भाई ने जब उससे मिलने के लिए आना चाहा था, तो वह टाल गई थी, जभी तो वह हर समय 'माहिये' की तानें उड़ाती रहती थी, जभी तो वह अपने दुपट्टों में बल डालती थी, जभी तो उसकी आँखों में सुरमा अधिक हुआ करता, जभी कितनी-कितनी देर तक 'दंदासा' मलती रहती!

और इस प्रकार सोचते-सोचते गुलाबे को चक्कर-सा आया और वह हँसने लगा!

और आज गुलाबा प्राइमरी-स्कूल का अध्यापक दो घूँट दूध के लिये अनुनय-विनय कर रहा था,—गुलाबा भी सच्चा था और आगे से इन्कार करने वाले भी सच्चे थे। दूध इतना थोड़ा होता था—और रोगी कितने अधिक थे! बच्चे कितने अधिक थे! माताओं के स्तनों में तो जैसे दूध की बूँद भी नहीं रही थी!

किन्तु बूढ़ों का वहाँ बिलबिलाते खड़ा रहना भी तो ठीक नहीं था, आज जबकि नेता ने आना था, वे कैम्प के प्रबन्ध के विषय में भला क्या कहेंगे।

और कुलदीप हाथ जोड़-जोड़कर उन्हें अपने-अपने तम्बू में जाने के लिये कहता।

पिछली बार जब कोई मन्त्री जी आए, तो उन्होंने एक रोगी से पूछा कि उसे खाने के लिये क्या मिलता था—

"खाने के लिये खाक मिलती है।" एक बुढ़िया आगे से भन्नाकर बोली और कैम्प के सारे कर्मचारियों के हाथ-पाँव फूल गए, किन्तु कुलदीप बिल्कुल न घबराया, कुलदीप जो अपने हाथ से रोगियों की खुराक का प्रबन्ध किया करता था—

"क्यों अम्माँ, तुमको सवेरे दूध मिला था कि नहीं ?"

"हाँ" बुढ़िया ने उत्तर दिया—

"तुझे कल शाम को फल मिले थे कि नहीं ?"

"हाँ" बुढ़िया फिर बोली—

"तो और तुझे क्या दिया जाए ?" मन्त्रीजी हँसकर उससे पूछने लगे। कुलदीप ने बताया कि पोठोहारनों के लिये खाने से मतलब है कि उन्हें जलेबियाँ दी जाएँ, लड्डू दिये जाएँ, पेड़े दिये जाएँ, अँदरसे दिये जाएँ, बर्फ़ी दी जाए, शकरपारे दिये जाएँ—और सब लोग हँस-हँसकर दोहरे होने लगे।

जिन रोगियों को दूध नहीं मिल सकता था, लेडी डॉक्टर उन्हें चावल लिखकर दिया करती थी और कुलदीप चावल बाँटता रहता; विशेष रूप से उस दिन जिस दिन किसी अधिकारी को आना होता अथवा किसी नेता के आने की सूचना होती। तैयारी के समय इस बात का विशेष ध्यान रक्खा जाता कि कोई शरणार्थी, कैम्प के कर्मचारियों से नाराज़ न दिखाई दें, किसी को कोई शिकायत न हो, सब लोग सुखी-जीवन व्यतीत करते दिखाई दें, ऐसा जान पड़े कि लोग अपने घर से भी अधिक प्रसन्न थे—चारों ओर सफ़ाई हो, और डॉक्टर बार-बार जतलाते कि उनकी सबसे बड़ी सेवा ही यही थी कि उन्होंने गँवार लोगों को साफ़ रहना सिखला दिया था। अब जब उन्हें कूड़ा-करकट फेंकना होता है तो चार कदम चलकर कूड़े वाले ढोल में फेंकते हैं, अब किसी को शौच के लिये जाना होता है तो वह टट्टियों की ओर मुँह करता है, किसी पेड़ या अन्य किसी वस्तु की ओट में बैठने

का प्रयत्न नहीं करता। कैम्प का कमाण्डर कहता कि उन्होंने उन्हें साँझी रसोई करनी सिखा दी है, अब प्रत्येक तम्बू का अलग चूल्हा नहीं है। इस प्रकार ईंधन की बचत भी हो जाती है, परिश्रम भी बचता है। अपनी-अपनी बारी पर टोलियाँ रोटियाँ पकाती है और सब मिलकर खाते हैं। दस्त-कारी के कार्यालय का कर्मचारी बताता कि वह उनसे घरेलू-दस्तकारियों का छोटा-मोटा काम लेते रहते थे ताकि ये लोग बेकार न रहें और वे काम में उलझे रहते थे। वे थोड़ा-बहुत अपने लिये कमा भी लेते हैं। लेडी डॉक्टर कहतीं कि वे गर्भवती स्त्रियों का ध्यान रखतीं थीं, बच्चों का ध्यान रखती थी; इस कैम्प में पैदा होने वाला कोई भी बच्चा नहीं मरा था—प्रत्येक महीने कम-से-कम डेढ़ सौ बच्चे उसके हाथों ही उत्पन्न होते थे। और देश के नेता तथा सरकार के अधिकारी सोचते कि इस कैम्प का प्रबन्ध कितना अच्छा था!

आज तो किसी बड़े नेता को आना था, सवेरे से सफ़ाई हो रही थी। डी० डी० टी० और फ़ीनाईल का दिल खोलकर प्रयोग किया जा रहा था। सफ़ाई के दारोग़ा का जी चाहता कि वह भी कभी कह सके—आपको इस कैम्प में एक भी मक्खी दिखाई नहीं देगी, रात को यहाँ एक भी मच्छर की घूँ-घूँ किसी ने नहीं सुनी थी; मच्छर वाली बात दिन को तो शायद चल ही जाती, किन्तु ये मक्खियाँ थीं कि कहीं-न-कहीं से आ ही जातीं।

कार्यक्रम यह था कि पाठशाला के बच्चे बड़े फाटक पर सबसे पहले "सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्ताँ हमारा" के गीत से स्वागत करेंगे। बच्चे और अध्यापक एक ही रंग की पगड़ियाँ बाँधे हुए, एक ही रंग के बूट पहने हुए न दिन-भर पढ़ेंगे, न दिन-भर खेलेंगे।

फाटक के पास पेड़ों-तले जब प्रतीक्षा करते-करते पाठशाला बन्द हो गई तो वे अपने-अपने घरों को चले गए। नेता जी न आए, जिससे पूछा जाता वह यही कहता कि आएँगे अवश्य, किन्तु यह पता नहीं कि कब आएँगे।

योजना थी कि एक तम्बू में बैठी हुई स्त्रियाँ ढोलक-गीत गा रही हों—ऐसे मालूम हो जैसे उन्हें किसी के आने की सूचना ही नहीं थी, जैसे

नियमानुसार गा रही हों। और दिन-भर कोई 'राज' ढोलक पीटती रही, दिन-भर पोटोहारनें 'माहिये' की तानें उड़ाती रहीं, कहीं कोई भी तो न आया।

"भाड़ में जाए री, आता है तो आता रहे। यह अँधेर कभी किसी ने देखा कि सवेरे से प्रतीक्षा कर-करके थक गई हैं।" आखिर एक ने एक कहा—

"आओ बहनो आओ चलें, रोटी की चिन्ता भी करनी है या नहीं ?"

"आओ, आओ चलें !"

"आओ आओ चलें !!"

और कैम्प के कर्मचारियों को बताए बिना सबकी सब स्त्रियाँ अपने-अपने तम्बूओं में चली गईं।

एक बूढ़े को यह कहने के लिये तैयार किया गया कि उसके पाँच बेटे मारे गए, उसका घरबार छीन लिया गया, किन्तु उसने ईश्वर की आज्ञा के सामने सिर झुका दिया था और अब उसे सरकार ने वे सभी सुख दे दिये थे जो उसे अपने घर में प्राप्त थे।

और दिन में कई बार एक कर्मचारी उसे यह बात तोते के समान रटाता रहा, दिन-भर बूढ़ा जहाँ बैठा वहीं बैठा रहा, न वह अपनी टाँगें फैला सका, न किसी और से बातें कर सका, आखिर जब पाँच भी बज गए तो कर्मचारियों की आँखें बचाकर बूढ़ा चुपके-से कहीं खिसक गया।

और राशन-डिपो पर बैठा हुआ कुलदीप सोच रहा था, यदि अब कोई आ भी जाए तो वह क्या देख सकेगा ? राशन लेने वाले तो अपना-अपना राशन लेकर जा चुके थे ! अब वह वहाँ बैठा हुआ किसी का क्या काम कर रहा था, किन्तु कैम्प-कमांडर का विचार था कि नेता आज अवश्य आएँगे।

तम्बुओं में बीमारों की दवा पहुँचाना इतना आवश्यक नहीं था। अब यदि कोई आएगा तो उसके पास इतना समय थोड़ा ही होगा कि एक-एक तम्बू में झाँक सके।

बस कोई आएगा, फूलों के हार गले में पहनवाएगा, (फूल तनिक

मुरझा अवश्य गए थे किन्तु उनपर बराबर पानी छिड़का जा रहा था) कर्मचारी उससे हाथ मिलाएँगे, किसी शरणार्थी-बच्चे के सिर पर वह हाथ फेरेगा, किसी शरणार्थी स्त्री को वह 'माँ' या 'बहन' कहेगा, इधर-उधर देखेगा, बच्चों के खेलने के मैदान में हरी घास की प्रशंसा करेगा और फिर चला जाएगा, घर पहुँचकर समाचारपत्र में वक्तव्य देगा!

कुलदीप सोचता—तम्बूओं के रोगी उसका मार्ग देख रहे होंगे, किन्तु क्या मालूम नेता आ जाएँ, और इस प्रकार सारा कैम्प बदनाम हो जाए। कुलदीप राशन-डिपो में बैठा बड़े फाटक की ओर दृष्टि जमाए देखता रहा, देखता रहा!

२१

"बादशाह होते हैं, मेहरबान होगा तो देगा!"

मियाँवाली की ओर से एक तसवीर जैसी लड़की कपड़े बाँटने वाले अधिकारी के सामने खड़ी थी। उसके साथ 'धनी' की एक अधेड़ उम्र की स्त्री भी थी। इस भरपूर जवान लड़की का सुहाग पोठोहार में विवाह के दस दिन बाद उजड़ गया था। पिछले चार दिनों में यह अप्सरा जैसी लड़की आठवीं बार यहाँ आई थी, उसके सिर पर फटा हुआ चीथड़े-चीथड़े मैला-कीचड़-सा दुपट्टा उसके गज-गज भर के बालों को ढाँप नहीं सकता था।

"बादशाह होते हैं...!"काली-काली और मोटी-मोटी आँखों वाली लड़की ने फिर अपना वाक्य दुहराना चाहा। किन्तु बाकी शब्द उसके कण्ठ में ही अटक कर रह गए। कपड़े बाँटने वाला अधिकारी अपने ध्यान में मग्न समाचारपत्र पढ़े जा रहा था।

मियाँवाली की वह 'हीर' सोचती—यदि उसे एक दुपट्टा मिल जाए तो वह इसी निर्धनता में निर्वाह करेगी, उसकी कमीज़ का गिरेबान उधड़ा

हुआ था, उसकी कमीज़ कन्धों पर से घिसी हुई थी, धुल-धुलकर उसकी कमीज़ इतनी पतली हो चुकी थी कि वह सिर उठाकर सीधी नहीं चल सकती थी। यदि एक दुपट्टा मिल जाए तो—वह इस्पात के समान गुथी हुई लड़की सोचती—अपने केशों को छिपा लेगी, अपने कन्धे ढाँप लेगी, अपने स्त्रीत्व को ढाँप लेगी—और लोग उसकी ओर आँखें फाड़-फाड़कर नहीं देखेंगे, और जहाँ से वह गुज़रा करेगी, लोग आवाजें नहीं कसेंगे।

कपड़े बाँटने वाला अफसर अभी तक अपना मुँह छिपाए समाचारपत्र पढ़ रहा था।

पास खड़ी 'धनी' की अधेड़-उम्र की स्त्री सोचती कि यदि अखबार अपने मुँह पर से उठाकर वह एक बार यह तो देख ले कि कपड़े माँगने वाली की सूरत कैसी थी!

किन्तु वह भीख थोड़ा ही माँग रही थी। इतनी बार वह आई, उसके साथ कोई-न-कोई स्त्री अवश्य होती थी, और वह सदैव आकर इसी प्रकार कुछ कहती कि वह बादशाह है और उसके मन में अवश्य दया उपजेगी तथा वह अवश्यमेव एक दुपट्टा दे देगा, जिस प्रकार बादल अपने भीतर पानी रख नहीं सकते और बरस पड़ते हैं, जिस प्रकार फल पककर नीचे गिर पड़ता है, चाहे उसकी इच्छा हो चाहे न हो!

नौजवान पोठोहारिन को कपड़े बाँटने वाले अधिकारी की उदारता और मानवता पर पूरा भरोसा था, और अब वह आठवीं बार आई थी कि कभी तो उसका दिल पसीजेगा, कभी तो देखेगा, कभी तो मेहरबानी करेगा!

"बेटी ईश्वर से माँग, बन्दे के आगे क्या हाथ पसारने ?" पास खड़ी अधेड़ आयु की स्त्री अब फटी हुई चुनरिया वाली स्त्री को समझा रही थी—

"ईश्वर से माँग जो देकर पछताता नहीं।" अधेड़ आयु की स्त्री कुछ समय बाद और अधिक उकता गई, उसके वाक्यों में व्यंग्य सिमटा आ रहा था—

"ये बादशाह होते हैं, जब मेहरबान होंगे तो फिर देंगे!" नौजवान

लड़की अपनी फटी हुई चुनरिया से जितना अपने को ढाँप सकती थी ढाँपे हुई थी।

और इस प्रकार अखबार के पीछे से अधिकारी ने पढ़ते-पढ़ते कहा—"माई फिर आना, कपड़ा आज समाप्त हो चुका है।"

और अपने गज-गज भर के बालों को सँभालती, अपनी छलक-छलक पड़ती जवानी को छिपाती, अपनी आँखों को झपकती, अपने अधर सिकोड़ती, अपने कपोल समेटती, अपने कंधों को सकुचाती, शरीर को कसमसाती जवान लड़की निराश होकर लौट गई।

लोगों को इस डिपो से कम्बल मिलते थे, तुलाइयाँ मिलतीं थीं, चादरें मिलती थीं, बर्तन मिलते थे, चर्खे मिलते थे, हर प्रकार के कपड़े मिलते थे, जूतियाँ मिलतीं थीं—अभी तो कल ही कलकत्ते के सिक्खों की ओर से बूटों से भरी हुई तीन लारियाँ आई थीं।

और 'पाशी' (उस लड़की का नाम) हैरान थी कि उसे एक दुपट्टे के लिए गिड़गिड़ाना पड़ रहा था। चल-चल कर, खड़े रह-रहकर उसके तलुए घिस गए थे।

जब 'छब्बी' की मलमल में 'कुलफ़' लगाकर वह बल डाला करती थी, वह दिन याद कर-करके वह थक चुकी थी। वे दिन अब उसे पराए लगते थे जब धोबी के दूध ऐसे धुले हुए धवल वस्त्र पहनकर वह धरती पर माप-मापकर कदम रखा करती थी—इस भय से कि कहीं वह आस्मान की ओर ही न उड़ जाए। अब वे दिन स्वप्न बन गए थे, जब उसके भरते हुए शरीर से कपड़ा छूते ही फटने लगता था, और उसकी माँ लाड़ से उसकी ओर देखकर मुस्करा दिया करती थी।

उसके दहेज में उसकी माँ ने इक्कीस जोड़े दिये थे, उसके सुसराल वालों ने सात जोड़े दिये थे। और जब वह कपड़े बदलने लगती तो उसके हाथ-पाँव फूल जाते। उसे पता नहीं लगता था कि कौन-सा जोड़ा पहने और कौन-सा न पहने!

उसके पास कई प्रकार के कानों के जेवर थे, नाक के गहने थे, माथे के

आभूषण थे, केशों में लगाने वाले गहने थे, शृङ्गार-पेटियाँ थीं, गले के तरह-तरह के आभूषण थे, कलाइयों के लिए 'गोखड़ू' थे, चूड़ियाँ थीं, पैरों के लिए चाँदी की झाँझरें थीं जिन पर सोने का काम किया गया था।

अगले दिन अड़ोस-पड़ोस में किसी स्त्री को अवकाश नहीं था, पाशी इसलिए अकेली ही चली आई, आखिर डर किस बात का है? कैम्प में शरणार्थियों का अपना डिपो था, जहाँ एक सरकारी अधिकारी बैठा अखबार पढ़ता रहता था या कार्डों पर हस्ताक्षर करता रहता था, और वस्त्रादि उसके अधीन काम करने वाले दिया करते थे।

पाशी बार-बार अपने से कहती—डर किस बात का? किन्तु फिर भी वह डर रही थी, उसके मन में एक प्रकार का आतंक-सा था, वह प्रत्येक पुरुष से डरती थी।

उस काली भयावनी रात को आग की लपटों में और एकान्त में जब एक नृशंस फ़िसादी ने उसे आकर कंधों से पकड़ लिया था—उसकी आँखों में बर्बरता थी, वासना थी। और एक ही क्षण में उसका मान और नारीत्व तथा सँभाल-सँभालकर रक्खी हुई जवानी धूल में मिल जाती यदि अदृश्य रूप से आई हुई गोली उस पापी पशु को वहीं ढेर न कर देती। पाशी को अपनी आँखों पर विश्वास न आता कि उसके सामने चारोंखाने-चित्त लहू में लथपथ एक मृतक पड़ा था! आग की लपटें और ऊपर उठ रहीं थीं। बच्चों की, स्त्रियों की, बूढ़ों की चीखें एक विचित्र-सा कोलाहल बन कर रह गई थीं। पाशी की छाया दूर धरेक से भी परे एक गहरे अंधकार में खोती जा रही थी!

उस दिन से पाशी प्रत्येक पुरुष से घबराती थी। प्रत्येक दृष्टि से सहम जाती जो उसकी ओर उठती थी, प्रत्येक कदम से काँप जाती जो उसकी ओर बढ़ता था।

और डिपो की ओर जाते हुए आज वह सोचती कि वह अकेली जा रही थी, उसके साथ आज कोई नहीं था।

आज उसके साथ कोई भी नहीं था जिसको सम्बोधित करके वह

कहती—"ये बादशाह होते हैं, मेहरबान होंगे तो ज़रूर देंगे !" आज वह यह कैसे कह सकेगी ? जब उससे कोई पूछेगा तो वह कैसे क्या बताएगी कि क्या लेने आई थी ?

उसे अपने कँवारपने के दिन याद आजाते, जब 'झीवरों'[1] की एक लड़की उनके दालान में किसी आवश्यकता से आया करती तो हँसने, खेलने और बातें करने लग जाती। पाशी ने एक बार भी उसके मुँह से अपनी माँग न कहने दी और इस प्रकार उसके गौरव को एक बार भी भंग न होने दिया। सदैव वह उसकी आवश्यकता को भाँप जाया करती और अपने-आप किसी-न-किसी बहाने वह वस्तु जाते हुए उसे पकड़ा देती।

डिपो पर आज बेहद भीड़ थी। ऐसे जान पड़ता जैसे सारे का सारा कैम्प वहाँ टूट पड़ा था। डिपो के समीप जाकर उसे पता लगा कि वहाँ कपड़े की कई गाँठें खुली थीं और लोग अपने-अपने हिस्से का कपड़ा पकड़वाकर ले जा रहे थे।

पाशी आगे होती, उसे कोई पीछे धकेलकर स्वयं आगे बढ़ जाता। सारी शाम वह धक्के खाती रही, चुपके-से कभी पीछे से आगे तथा आगे से पीछे होती रही।

थककर, हारकर वह तम्बू के बाहर पड़े हुए एक पत्थर पर बैठ गई ताकि जल्दी वाले जब चले जाएँगे तो वह आगे आ जाएगी।

"माई तुझे क्या चाहिये ?" डिपो का अधिकारी पूछेगा और वह अपने दुपट्टे के चीथड़ों की ओर देख लेगी।

धीमा-धीमा अन्धकार होने लगा था, लोग कहीं-कहीं आ-जा रहे थे। अब पाशी डिपो के सामने की दिशा में आ खड़ी हुई, खड़ी रही—खड़ी रही। उससे आगे बढ़कर कुछ माँगा न जाता। अब भीड़ बिल्कुल नहीं थी। कोई-कोई शरणार्थी अपना, राशनकार्ड दिखाकर अपने नाम का कपड़ा लेता और चलता बनता। लोग बाद में आते और पहले चले जाते, किन्तु पाशी

---

१. पानी भरने वाले।

के मुँह से शब्द न निकलते। दाएँ हाथ में पकड़ा हुआ कार्ड उसने सीने से लगाया हुआ था, जहाँ-जहाँ से वह उसे पकड़ती वहाँ-वहाँ से अँगुलियों की पोरों के पसीने के कारण वह गल जाता।

आखिर जब कोई भी न रहा, डिपो के अधिकारी ने थककर गर्दन ऊपर उठाई—सामने पाशी खड़ी थी, डिपो के एक बाँस के सहारे, मौन। जैसे उसे स्वयं पता न हो कि वह क्यों वहाँ आई थी।

लालटेन के मद्धम से प्रकाश में, हर पल बढ़ते हुए अँधेरे में डिपो के अधिकारी की थकी-माँदी आँखों ने एक शरणार्थिन-लड़की को देखा—जैसे किसी फूल को मसल दिया गया हो, जैसे कोई कलिका कीचड़ में गिर पड़े, जैसे गन्दे पानी में चाँद कभी डूब जाए और कभी उभर आए। डिपो के अधिकारी को ऐसे अनुभव हुआ जैसे वह कोई स्वप्न देख रहा हो, ज्यों-ज्यों वह लड़की की ओर देखता, त्यों-त्यों उसकी आँखें और खुलतीं।

"क्यों बेटी! कहाँ है तेरा कार्ड?" इतने में एक बूढ़े मुंशी ने आगे बढ़कर पाशी से कार्ड ले लिया—

"तुझे क्या चाहिये?"

लड़की चुप थी—

"सलवार दूँ, कमीज दूँ या दुपट्टा?"

लड़की अभी तक मौन थी—

"तेरा दुपट्टा बहुत फटा हुआ है!"

और बूढ़े मुंशी ने मोटी मलमल के थान में से कुछ कपड़ा फाड़ना आरम्भ कर दिया—

इतने में डिपो का अधिकारी अल्मारी की ओर उठकर गया, उसकी दृष्टि अब शरणार्थी-स्त्री की कमर से होती हुई नीचे तक लटकती हुई केशराशि तक जा चुकी थी।

अल्मारी में से उसने एक लाल-सुर्ख रेशम का सूट निकाला और पाशी को दे दिया!

लड़की हक्की-बक्की उस अधिकारी की ओर देखने लगी—

बूढ़े मुंशी ने मलमल को फाड़ना बन्द कर दिया—

"अच्छा, अच्छा, अच्छा!" कहते हुए उसने गज फर्श पर पटक दिया—

जिन लड़कियों के उस शरणार्थी-कैम्प में आकर विवाह होते थे, उनके लिये कई दानियों ने रेशमी जोड़े दिये थे। बूढ़ा मुंशी अपनी गलती पर लज्जित था—

"लेकिन भाई···" रेशमी सूट अपनी ओर बढ़ता हुआ देखकर पाशी तत्काल बोल उठी—और उसकी आँखों ने कहा—"मैं इस सूट का क्या करूँगी, मुझे तो केवल अपना तन ढाँपना है, इस सूट से तो मेरे शरीर को आग लग जाएगी।"

बूढ़े मुंशी ने मलमल का दुपट्टा फाड़कर पाशी के हाथ में दे दिया—

दूर···अन्धकार में लड़की को विलीन होता हुआ देखकर डिपो का अधिकारी सोच रहा था कि कुछ लोग न जाने किस मिट्टी के बने हुए होते है—और फिर उसने अखबार के पीछे अपनी आकृति छिपा ली।

२२

अभी काफी सवेरा था—

अपने तम्बू के बाहर सतभराई स्वप्नों में डूबी हुई थी। पेशावरी ताँगे में बिठाकर कुलदीप सतभराई को शहर दिखाने के लिए ले जाता है; उधर जिस दिन परमेसरी उसे जिस ओर ले गई थी, जहाँ बाजार में बेहद भीड़ थी, पग-पग पर जहाँ हिचकोले लगते थे, जहाँ ताँगे वाला केवल घंटी बजाए जाता था, बजाए जाता था; बिखरे हुए शेर की भाँति जहाँ घोड़ा कभी उछलता, कभी रुक जाता, कभी दौड़ने लगता, और कभी दुल्की चाल चलने लगता, वहाँ—जहाँ कोठों की मंजिलों-पर-मंजिलें चढ़ी हुई थीं, वहाँ—जहाँ मस्जिदों के गोल और संगमरमर के गुम्बद थे; मन्दिरों के ऊँचे और सुनहरे कलश थे; विशाल लम्बी-चौड़ी सड़कें थीं, सड़कों के किनारे घास की चादरें और न जाने कितना-कुछ नया तथा अनदेखा—अनजाना—फिर वह बाज़ार जहाँ खिड़कियों में बैठी हुई स्त्रियाँ जिन्होंने चेहरों पर पाउडर पोता हुआ था, जिन्होंने होठों पर सुर्खी की तह चढ़ाई हुई थी, जिन्होंने

बालों में तोता-मैना काढ़े हुए थे और जिनके सिरों पर आँचल नहीं ठहरते थे; जिनकी आँखों के सुरमे के पीछे शरारत और बेशर्मी छलक-छलक पड़ती थी; जो राहगीरों को संकेत से बुलाती थीं और सड़क के किनारे खड़े लोगों के साथ हँस-हँसकर बातें करतीं, जहाँ बाँहों-में-बाँहें डाले हुए फिरंगी-जोड़ों की समझ में नहीं आता था कि वे अपने से क्या करें, अपने समय से क्या करें, जहाँ दर्पण की भाँति चमकती हुई सड़क पर घोड़े के पाँव फिसल-फिसल जाते—'टोपी रख' झील के तट पर ऊँचे-ऊँचे पुराने पेड़ों-तले झुटपुटे के समय अंग्रेज-महिलाएँ गिटमिट-गिटमिट किया करतीं। अंग्रेज-पुरुष शराब के नशे में गुट जहाँ औंधे पड़े होते! पेशावरी ताँगे के रबड़ के पहिये, पेशावरी ताँगे की गद्दियाँ, पेशावरी ताँगे की ऊँची और चौड़ी छत जिसमें ठंडी-ठंडी हवा आकर बालों से अठखेलियाँ करती—पेशावरी ताँगे के घोड़े के घुँघरू...

और छन-छन करता हुआ एक ताँगा सतभराई के तम्बू के आगे आ खड़ा हुआ। सतभराई पसीने-पसीने हो रही थी, वह उठ खड़ी हुई।

ताँगे में सोहणेशाह था—

"चचा!" सतभराई के मुँह से चीख निकल गई—

सोहणेशाह के रुँधे हुए कण्ठ में से कोई आवाज़ न निकल सकी। सोहणेशाह के गले लगते हुए बड़ी कठिनता से रोग से छुटकारा पाई हुई सतभराई को मूर्च्छा आ गई—जब उसे होश आई तो सतभराई को अपनी आँखों पर विश्वास न आया।

"यह सपना है—यह सपना है!" सोहणेशाह की दूध ऐसी श्वेत दाढ़ी में वह अंगुलियाँ फेरती जाए और धीरे-धीरे अपने-आप उसके होंठ हिलते जाएँ।

"यह सपना है—" सतभराई अब सोहणेशाह की अँगुलियों को टोह रही थी। हाथ को छू रही थी। बाँहों को दबा रही थी।

"यह सपना है—!" फिर सतभराई ऊँची आवाज़ में चीखी और सोहणेशाह के गले से चिमट गई, इस बार दोनों फूट-फूटकर रोए।

सोहणेशाह अब बीमार नहीं था। सोहणेशाह के वस्त्र साफ-सुथरे थे जैसे वह सदैव अपने गाँव में पहना करता था। ताँगे में सोहणेशाह फलों के टोकरे लाया; ट्रंक लाया जिसमें उसके अपने कपड़े थे, सतभराई के वस्त्र थे।

किन्तु सबसे पहले जो वस्तु सोहणेशाह ने सतभराई को दिखाई वह नोटों की गड्डी थी, जो उसने ट्रंक के एक कोने में रखी हुई थी। कैम्प से बीमारी की दशा में निकल जाने के उपरान्त सोहणेशाह की कहानी अत्यन्त विचित्र थी।

सोहणेशाह को केवल इतना याद था कि हस्पताल में एक अधिकारी ने उसे पहचान लिया था, फिर उसका इलाज होता रहा। उसके लिए एक अलग कमरे का प्रवन्ध किया गया; प्रतिदिन टीके लगा-लगाकर, फलों के रस पिला-पिलाकर उसके मस्तक, सिर और शरीर की मालिश कर-करके उसे स्वस्थ कर दिया गया।

स्वस्थ होने के पश्चात् पहली बात जो सोहणेशाह ने की, वह यह थी कि उस अफसर की सहायता से वह फौजी-ट्रक में बैठकर गाँव-गाँव राजकर्णी को ढूँढता रहा, किन्तु राजकर्णी का कहीं कोई पता न था। सात-आठ सौ पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे उनके अपने गाँव में मारे गए थे, जलाये गए थे।

राजकर्णी कहीं भी नहीं थी, उसने एक-एक गाँव के सरपंच की अनु-नय-विनय की, उन्हें लालच दिया, माथा रगड़ा, राजकर्णी का किसी को कुछ ज्ञान न था! किन्तु अपनी हवेली के खण्डहरों में ठोकरें खाते हुए उस मलबे के ढेर में से डाकखाने की 'पास-बुक' और बैंक की किताब मिल गई थी। और फिर उसने क्या किया?—और फिर उसने क्या किया?—और फिर उसने क्या किया?

"तूही अब मेरी 'रानी' है, तूही अब मेरी 'सत्तो' है, तूही अब मेरे भाई अल्लादित्ता की निशानी है।" आखिर सोहणेशाह ने सतभराई को गले से लगाते हुए सिसकना शुरू कर दिया—

और सतभराई के भीतर की सारी प्रत्येक कठिनाई, प्रत्येक आपत्ति और

प्रत्येक चोट सहती जा रही थी, चुपचाप ईश्वरीय आज्ञा के आगे सिर झुकाकर।

सोहणेशाह ने बताया कि अल्लादित्ता की कोई कब्र नहीं बनाई गई थी। मुसलमान जाति में उत्पन्न होने वाले अल्लादित्ता को भी हिन्दुओं और सिक्खों की लाशों के साथ जलते हुए मकानों में फेंककर भस्म कर दिया गया था। अल्लादित्ता की सम्पत्ति पर भी फ़िसादियों ने उसी प्रकार अधिकार किया हुआ था जिस प्रकार हिन्दुओं और सिक्खों की सम्पत्ति पर। अल्लादित्ता के घर और उसकी हवेली को उसी प्रकार लूटा गया था जिस प्रकार हिन्दुओं और सिक्खों के घरों तथा हवेलियों को। अल्लादित्ता—जिसने केवल इतना कहा था कि चोली-दामन का साथ नहीं छूट सकता। इस प्रकार एक पड़ोसी का दूसरे पड़ोसी पर हाथ उठाना इस्लाम में बिल्कुल नहीं कहा गया था; जिसने काजी के इस आदेश को झुठलाने का प्रयत्न किया था कि सारे हिन्दू-सिक्ख काफ़िर हैं।

सोहणेशाह ने यह भी बताया कि उनके गाँव के लोग यही समझ रहे थे कि सतभराई भी कहीं उनमें मारी गई है। कई नौजवान लड़कियों की लाशें पड़ीं थीं, उन सब पर तेल छिड़क कर आग लगाकर उन्हें भस्म कर दिया गया था।

सोहणेशाह और सब कुछ भुला सकता था, किन्तु इस बात को कभी नहीं भुला सकता था कि बड़े गुरुद्वारे के बरामदे में तम्बाकू, सिगरटों और बीड़ियों की छाबड़ी लगाकर वहाँ एक व्यक्ति बैठ जाए। वह दिनभर गुरुद्वारे की ओर पीठ करके बैठा रहता था, गुरुद्वारे की दीवार पर पान खाकर लोगों ने पीक फैंकी हुई थी। दिन भर गुरुद्वारे के बरामदे में हुक्का गुड़गुड़ाता रहता था और लोग वहाँ बैठे अल्ला की क़समें खाते रहते और गोमांस की आनन्द-पूर्वक प्रशंसा करते रहते। 'पुरियों' के इलाके के सबसे ठंडे कुँए में चमड़े के 'बोके' डाले जा रहे थे—सोहणेशाह ने अपनी आँखों से देखा था। यह कुँआ वह था, जहाँ पुरियों की पवित्रता मुसलमानों का पाँव नहीं पड़ने देती थी। सोहणेशाह ने स्वयं देखा कि मुसलमान-स्त्रियाँ उन्हीं 'बोकों' में

से पानी पीतीं और शेष जल से घड़े भर लेतीं और जूठे बोक फिर कुँए में लटका देतीं।

सोहणेशाह को 'लाखी' अत्यन्त प्रिय थी। जब वह चारों ओर से निराश हो गया तो उसने अपनी गाय के सम्बन्ध में लोगों से पूछा—लाखी जिसे पिछले वर्ष मण्डी से पारितोषिक मिला था और पाँच-पाँच सौ, सात-सात सौ रुपये जिसका मोल पड़ता था।

लाखी को गड़बड़ के बाद के उत्सव पर मार डाला गया था, हिन्दुओं और सिक्खों के सारे पशु इस प्रकार समाप्त हो चुके थे। जब तक एक भी पराया पशु शेष था, फ़िसादियों के घर दाल या सब्ज़ी नहीं पकाई गई थी।

और इस प्रकार छोटी-छोटी, बड़ी-बड़ी बातें सोहणेशाह करता रहा—

सवेरा हो गया—दोपहर हो गई।

कुलदीप नहीं आया था—सतभराई हर घड़ी के बाद उचककर बाहर देख लेती, और ज्यों-ज्यों समय बीतता जाता वह अधिक विकल होती जाती।

"कहीं चाचा की आवाज़ सुनकर न लौट गया हो!" आख़िर उसने अपने आप दिल को धीरज बँधाया—

सोहणेशाह ने सतभराई को बताया कि हिन्दुओं और सिक्खों के मकानों के साथ मुसलमानों का भी पूरा एक मुहल्ला जल गया था। उन्होंने रक्षा का बहुतेरा प्रयत्न किया किन्तु आग को न दबाया जा सका। काग़ज़ों में तो मुसलमानों ने यह लिखवाया था कि पहले हिन्दुओं और सिक्खों ने मुसलमानों के मुहल्ले को आग लगाई तो फिर बदले में उन्होंने हाथ उठाया, किन्तु सोहणेशाह के सामने कौन झूठ बोल सकता था?

खालसा स्कूल—इलाके-भर के सबसे सुन्दर भवन में आजकल नट और खानाबदोश डेरा डाले हुए थे। उसके कुछ कमरे जले हुए थे, शेष कमरों का सामान वहाँ के निवासियों ने ईंधन बनाकर जला दिया था। रात-भर वहाँ गाने-बजाने का कार्यक्रम होता और तमाशाई लोग रात-भर बाहर ही रहते।

पंचायती गुरुद्वारे की उन्होंने मस्जिद बना ली थी—इस बात की

सोहणेशाह बार-बार प्रशंसा करता। पहले वहाँ गुरु का नाम लिया जाता था अब वहाँ अल्ला का नाम लिया जाता है—इसमें क्या अन्तर है, अल्ला-गुरू में क्या भेद है।

'मैंने तो उनसे कहा कि बड़े गुरुद्वारे में भी नमाज पढ़ लिया करो, लेकिन सुसरों ने मेरा कहा ही नहीं माना!' सोहणेशाह बार-बार दुःख से हाथ मलता।

दोपहर ढल रही थी और कुलदीप अभी तक नहीं आया था। कुलदीप, जिसका कुछ दिनों से नियम बन गया था कि सतभराई से मिलने के लिये आए; कुलदीप, जिसके बिना सतभराई का हृदय विकल रहता, उसे आसपास नीरस-सा जान पड़ता; कुलदीप, कल अनजाने में जिसके स्पर्श ने सतभराई की धमनियों में बिजलियाँ दौड़ा दी थीं; कुलदीप जिसके सामने सतभराई का जी चाहता कि वह रोये जाए, रोये जाए, रोये जाए! कुलदीप अभी तक नहीं आया था। ये लड़के कैसे कठोर होते हैं! फिर वह मन-ही-मन में झुँझलाने लगती।

सोहणेशाह ने सतभराई के लिये खरीदे हुए कपड़े उसे दिखाए। सोहणेशाह ने बैंक से निकलवाए हुए आभूषण सतभराई के हवाले कर दिये। नया जोड़ा पहनकर जब तम्बू से बाहर आई तो उसके कपोलों पर उसका पुराना यौवन कौंदने लगा। गोरी-गोरी आकृति, गुलाबी-गुलाबी कपोल और प्याजी रंग का सूट—सतभराई जैसे आसमान से उतरी हुई अप्सरा बन गई।

"बेटा, तुझे कहीं नजर न लग जाए!" सतभराई को देखते हुए सोहणेशाह ने कहा। शरणार्थी-कैम्प में कोई ऐसे वस्त्र नहीं पहना करता था।

प्याजी रंग का रेशमी सूट पहनकर और मन में कुलदीप की कोमल-सी अभिलाषा रखकर नजर अवश्य लग जाएगी, किन्तु सतभराई सोचती कि वह क्या करे? आजकल स्वयमेव उसका जी चाहता कि वह बाल सँवारती रहे, हाथ धोती रहे, पैर मलती रहे। जबसे वह बीमारी से उठी थी, जीवन न जाने उसे क्यों भला-प्यारा लगने लगा था। और कुलदीप ने आकर जैसे

उसके सपनों में रंग घोल दिया !

सोहणेशाह ने फिर सतभराई को बताया कि वह अब शरणार्थी-कैम्प को छोड़ देगा। वह सोचता कि रावलपिण्डी से दूर···बहुत दूर जाकर फिर ज़मीन लेगा। वहाँ—जहाँ सोहणेशाह ने सुन रक्खा था, खेत सोना उगलते हैं; जहाँ उनके गाँव के लोग जाकर पहले से भी अधिक अच्छी दशा में पहुँच चुके थे—कहीं लायलपुर की ओर।

सतभराई सुनती जा रही थी, सुनती जा रही थी; किन्तु सोहणेशाह के प्रत्येक वाक्य पर उसका दिल बैठ जाता। वे कैम्प छोड़ जाएँगे; उस कैम्प को छोड़ जाएँगे जहाँ कुलदीप रहता है ? उस कैम्प को छोड़ जाएँगे जहाँ उसने एक सपना देखा, जहाँ उसके हृदय में एक लहर-सी उठी ?

किसी बहाने उठकर सतभराई तम्बू से बाहर टहलने लगी। वे कैम्प छोड़ जाएँगे—आखिर क्यों ? उसकी आँखों में आँसू आते-आते सूख गए।

किन्तु आज कुलदीप को क्या हो गया था ? दिन-भर में एक बार नहीं आया था और अब तो शाम हो चुकी थी, एक तो वह उसकी व्यस्तता से बहुत तंग थी—'लट्टू के समान जहाँ कोई लगा देता है लग जाता है', वह अपने-आप से कितनी देर तक यूँ बुड़बुड़ाती रही। कल वह कितना प्यार-प्यारा लग रहा था, सवेरे वह आया, फिर दोपहर को आया, फिर शाम को आया और इकट्ठे बैठे-बैठे रात हो गई।

'यदि चच्चा और एक दिन बाद आता !' सतभराई सोचती कि बस एक दिन और, फिर···सोहणेशाह जब तक नहीं आया था, एकांत की रातें उसे काट खाने को दौड़तीं थीं। वे रातें जिन्हें वह रो-रोकर काट दिया करती थी। वे दिन, जब उससे कोई बात करने वाला नहीं होता था। वे सप्ताह, जब उसे सतभराई कहकर कोई आवाज़ देने वाला नहीं होता था—और अब जबकि उसे कैम्प भला लगने लगा था, अब जबकि तम्बू में उसे रौनक दिखाई देने लगी थी, अब जबकि उसे अपना अन्तर प्रसन्न और उल्लसित अनुभव होने लगा था, अब जबकि दुःख-दर्द उसका पीछा छोड़ रहे थे—एक नई कसक, एक नया दर्द, एक नई जलन उसे कहीं अपने

भीतर अनुभव हो रही थी।

"चचा तुम क्या कह रहे हो कि हम यहाँ से चले जाएँगे?"

"हम चले जाएँगे"—हृदय की प्रत्येक धड़कन से उसे यह आवाज आती हुई सुनाई दे रही थी।

२३

कुलदीप अभी तक नहीं आया था ।

और रात हो गई—

लेटे हुए सतभराई ने आकाश की ओर देखा, चार दिन का यह चाँद बेचारा अभी छिप जाएगा। एक लजीली-सी, एक सन्तोषप्रद-सी, एक मौन-सी सनसनाहट उसके कानों में मुखरित हो रही थी।

कैम्प में लोग बहुत जल्दी सो जाया करते थे। और दिन होते ही खाने-पकाने से छुट्टी पाकर शाम को चारों ओर शान्ति छा जाती। कई दिन का थका-माँदा सोहणेशाह तम्बू के बाहर खुले मैदान में चारपाई बिछाकर कब का खर्राटे भर रहा था।

और चाँदनी न जाने क्या-क्या कुछ सतभराई के कानों में फूँक रही थी। कल भी उससे कुछ कहती रही, कहती रही—जब तक उसकी आँख न लग गई। आज भी उसने वही रट लगा रक्खी थी, हल्की-हल्की-सी चुट-कियाँ· · ·जैसे पवन का कोई झोंका फूल की पत्तियों को सहलाकर चला जाए!

अभी तो तीसरी-चौथी रात है। यदि चौदहवीं रात हो, सतभराई सोचती, तो मैं कपड़े फाड़कर आकाश को उड़ जाऊँ! उसे ऐसे अनुभव होता था जैसे कोई चन्द्रकिरणों में घुला हुआ, रचा हुआ, उसके अंग-अंग में, उसके रोम-रोम में विलीन होता जा रहा है। फिर उसे यों अनुभव हुआ जैसे चाँदनी के साथ उड़-उड़कर वह झूला झूल रही हो और उसकी बाँहें जैसे थक-सी गईं। प्याज़ी रंग के सूट में लिपटी हुई, दूध ऐसी श्वेत चादर पर; गौरवर्ण की कोमलतम बाला चाँदनी से खेलती-खेलती आखिर सो गई।

अभी कठिनता से उसकी आँख ही लगी थी कि तम्बू के पिछवाड़े से एक छाया उसके पैरों पर पड़ी, एक पगड़ी की छाया···कितनी देर तक वह छाया वहीं खड़ी रहकर आगे बढ़ी, एक पगड़ी और दो कन्धों की छाया···कितनी देर तक वह छाया जैसे वहीं जमकर रह गई और फिर वह ऊपर आ गई। अब छाया सतभराई के सीने पर पड़ रही थी।

धीरे-धीरे चौथी रात का चाँद पीला पड़ना आरम्भ हो गया, चाँद छिपता गया, छिपता गया—छाया मिटती गई, मिटती गई! और रात काली हो गई!

सतभराई की चारपाई के किनारे बैठा हुआ कुलदीप सोचता कि वह कैसे सो सकती थी! वह उसके भीतर आग का अलाव जलाकर कैसे सो सकती थी? वह क्योंकर सो सकती थी, इस प्रकार सुख से जैसे कोई थकी हुई पड़ी हो! चाँदनी में दूध ऐसी श्वेत चादर पर चाँद की किरणों ने उसे कोई सन्देश नहीं दिया था, यह कैसे हो सकता था? यह क्योंकर हो सकता था?

सतभराई सोई पड़ी थी, पलकों-से-पलकें जुड़ी हुईं, काले स्याह केशों की एक कोमल-सी लट पेशानी पर ढुलकी हुई, धीमे से भिंचे हुए अधर जिनमें से मोतियों ऐसे दाँत दिखाई दे रहे थे, अँधकार के धुँधलेपन से उलझती हुई कपोलों की कोमलता यों जान पड़ती थी जैसे ताज़ा शहद मिट्टी में समा रहा हो!

सोए-सोए सतभराई ने करवट ली, उसकी झूलती हुई बाँह उस किनारे

पर आकर जहाँ कुलदीप बैठा हुआ था, तोरी के समान झूलने लगी। लम्बी-लम्बी अँगुलियाँ···कुलदीप ने सोचा—बाँह यों झूलती हुई थक जायगी, धीमे से झिझकते हुए, पसीना-पसीना हुए अपने हाथों से उसने उसका हाथ उपर उठाने का प्रयत्न किया कि सतभराई की आँख खुल गई। इस प्रकार कि जैसे वह कभी सोई ही नहीं, ऐसे जैसे किसी ने झूटमूठ आँखें बन्द कर रक्खी हों, ऐसे जैसे कोई किसी की प्रतीक्षा कर रहा हो और दूसरा ठीक समय पर आ जाए, ऐसे जैसे भीतर आकर नौकर किसी मिलने वाले का कार्ड दे दे और द्वार खुलने पर वह व्यक्ति देहली पर खड़ा हो! सतभराई तनिक न घबराई—उसे यह बात तनिक भी विचित्र न लगी, नई न मालूम हुई। कुलदीप ने उसे देखा, तो उसके अधरों पर मुस्कान बिखर गई—"मैं जानती थी तुम आओगे।" जैसे उसकी आँखें कह रहीं थीं—"तुम दिन-भर नहीं आए, आखिर किसी समय तुम्हें आना ही था! मैं तुम्हें बुलाऊँ और तुम न आओ, यह कैसे हो सकता है? तुम्हें मेरा सन्देश किसने दिया, चाँदनी ने, पवन के झोंके ने? मेरा कोई शीतल श्वास तुम्हारे पास तो नहीं पहुँच गया?" और इस प्रकार सतभराई न जाने क्या-क्या कुछ कह गई।

फिर सतभराई उठी, कुलदीप उठा, और वे दोनों तम्बू के एक कोने में बैठकर बातें करने लगे—

"आज सवेरे मेरा चचा लौट आया है!" सतभराई ने सबसे पहले अपने रेशमी सूट के पहनने का कारण बताया, और फिर उसने सारी गाथा कह सुनाई।

"फिर तो तुम मुझे छोड़ जाओगी!" कुलदीप की दृष्टि सतभराई से प्रश्न कर रही थी।

"हाँ कुलदीप! मेरा शरीर तुमसे दूर हो जायगा!" सतभराई के मौन ने उसे समझाया।

तारों की छाया में कुलदीप शिकायत करता रहा, सतभराई सुनती रही। सतभराई शिकायत करती रही और कुलदीप लज्जित होता रहा।

घड़ियाल वालों ने एक बजाया। निद्रा में डूबे कैम्प में कितनी देर तक घड़ियाल की आवाज गूँजती रही, कभी इधर से आ जाती और कभी उधर से।

दूर...नलके के पास अपने पंजों पर थूथनी टिकाए काला कुत्ता उठा, सीधा सतभराई के तम्बू की ओर दुम हिलाता हुआ आया। पहले उसने कुलदीप को सूँघा और फिर उसने सतभराई को; फिर जिस मार्ग से आया था उसी मार्ग से लौट गया।

आकाश पर एक तारा टूटकर किसी अन्य तारे की ओर जा रहा था।

"तुम सोचती हो हम दोबारा नहीं मिल सकेंगे?"...कुलदीप की दृष्टि सतभराई से पूछ रही थी—

"मेरे साजन!" आखिर सतभराई के मुँह से कैसे निकला—"हम मिलेंगे, हम जरूर मिलेंगे—इस दुनिया की कौन-सी चीज हमें मिलने से रोक सकती है। यदि जिन्दगी रही तो मेरे प्यारे साजन! मैं कहती हूँ कि हम जरूर मिलेंगे! मेरी ओर देखो, ये हाथ, ये होंठ, ये गर्दन, मेरा अंग-अंग, मेरा रोम-रोम तेरा है! तारों की जब घनी छाँव होगी, चाँदनी जब मेरी पलकें खोल-खोल देगी, जब शीतल पुरवैया आकर मुझसे कानों में बातें करेगी, मैं तुम्हें बुला भेजूँगी, स्वप्नों में प्रार्थनाएँ कर-करके विनती कर करके।

"तुम आओगे न? वचन दो कि तुम आओगे? देर तो नहीं करोगे? तुम मर्द लोग किसी को भुला तो नहीं देते? मैं तुम्हें हमेशा याद करूँगी। मैं वायदा करती हूँ कि मैं तुम्हें हमेशा दिल के तख्त पर बिठाकर रखूँगी। तुम्हारी याद, तुम्हारी मीठी याद, हमेशा अपने सीने में ताजा रखूँगी।

"उस दिन तुमने कहा था कि मैं तुम्हें 'माहिये' के बोल सुनाऊँ, तो मैंने तुम्हें टाल दिया था। और अब मैं सवेरे फ़सलों में घूमती हुई हर रोज माहिया गाया करूँगी, हर रोज शाम को को ठण्डे-ठण्डे पानी में पाँव डालकर ऊँची आवाज में माहिया गाया करूँगी। तुम चाहो तो कभी आकर

सुन लेना।

"हाय! यदि तुम दो दिन कहीं पहले आ जाते! मैं इतने दिन यहाँ अकेली पड़ी रही! रात को रो-रोकर जब मैं औंधे मुँह गिर पड़ती थी, इस तम्बू की दीवारें मुझे काट खाने को दौड़तीं थीं—उस वक्त न चचा आया और न तुमने कभी इधर को मुँह किया।

"अब तुम खुद ही बताओ कि मैं चचा को क्या मुँह दिखाऊँ? कैसे उसे बताऊँ? क्यों उसे बताऊँ? कौन से वक्त······"

"तुम्हें अपने चचा को यह बात बताने की जरूरत नहीं।" तम्बू के पीछे से सोहणेशाह चुपचाप सतभराई और कुलदीप के सामने आकर खड़ा हो गया। उसने सब-कुछ सुन लिया था; जब से घड़ियाल बजा था सोहणे-शाह उसी समय से जाग रहा था। उसने काले कुत्ते को उनकी ओर आते हुए देखा था, दोनों को सूँघकर लौटते हुए देखा था, उसने आकाश पर एक तारे को टूटकर दूसरे तारे से मिलते हुए देखा था, और फिर सतभराई ने बोलना आरम्भ कर दिया था।

सतभराई और कुलदीप दोनों सोहणेशाह के सामने दृष्टि झुकाये हुए खड़े थे।

तीनों उसी प्रकार देर तक चुपचाप खड़े रहे। आखिर एक झटके से सोहणेशाह सतभराई को पकड़कर भीतर तम्बू में ले गया।

सामने खड़े कुलदीप ने आकाश की ओर देखा, वहाँ तारे वैसे-के-वैसे झिलमिला रहे थे, वैसी की वैसी एक फीकी-सी हँसी हँस रहे थे, और उसके चारों ओर जैसे अँधकार और गहरा होता जा रहा था। काला कुत्ता न जाने कहाँ से निकल आया और कुलदीप के पाँव सूँघने लगा। आखिर आगे-आगे काला कुत्ता चल पड़ा और पीछे-पीछे कुलदीप। काला कुत्ता सीधे उसके तम्बू की ओर गया और वहाँ उसे उसमें दाखिल होते देखकर लौट पड़ा। कपड़े बदलकर कुलदीप बाहर अपनी चारपाई पर आ पड़ा, उसने बहुतेरी कोशिश की, किन्तु उसे नींद नहीं आ रही थी।

"मैं भी पटियाले चला जाऊँगा।"···आखिर उसने फैसला कर लिया।

पटियाला और फ़रीदकोट के महाराजाओं ने अखबार में निकलवाया था कि पोटोहार के लुटे-पुटे हिन्दू और सिक्ख उनकी रियासतों में आकर बस सकते हैं और उन्होंने अपने अफसर भी भेज दिए थे कि वे लोगों को आमंत्रित कर आएँ। उनके साथ ही तो कुलदीप तम्बुओं में घूमता हुआ दिन-भर सूचियाँ तैयार करता रहा था।

और अब कुलदीप ने सोचा—पटियाले या फ़रीदकोट, जहाँ-कहीं भी उसके सींग समाएँ वह अवश्य चला जायगा। रियासतों के अधिकारियों ने तो उससे कई बार कहा था कि वह लोगों की पूरी गाड़ी भरकर वहाँ ले आए। जमीन वालों को जमीन का वचन दिया गया था; कुएँ वालों के लिए वहाँ कुएँ पड़े थे, दुकानदारों के लिए दुकानें खाली की गई थीं। नए मकान बनवाए जा रहे थे, पुराने मकान शरणार्थियों के लिए विशेषरूप से खाली रख दिये गए थे। पटियाले की सरकार ने नए आने वाले लोगों के लिए लंगर खोला हुआ था। रोगियों के लिए हस्पताल खुला था और बच्चों के लिए दूध का प्रबन्ध किया गया था। दस्तकारों के लिए कई धन्धे पैदा किये गए थे, छोटी-छोटी वस्तुएँ बनाने के लिए दस्तकारी के केन्द्र खोले गए थे।

कितने लोग तो वहाँ पहले ही पहुँच चुके थे, कितने लोग तो अपने-अपने ठिकानों पर बैठ भी चुके थे।

कुलदीप सोचता—फ़रीदकोट या पटियाले जाकर वह भी नौकरी कर लेगा, किसी कार्यालय की क्लर्की या किसी पाठशाला में अध्यापन! अब और पढ़ना उसके लिए कठिन था, वह सोचता—किसी पाठशाला का साधारण-सा अध्यापक बनकर मैं लड़कों के होस्टल में पड़ा रहा करूँगा। न कभी घर बनाऊँगा और न कभी कोई और सपना देखूँगा।

बर्बाद लोग इस प्रकार क्योंकर आबाद हो सकते थे?

कुलदीप को अपने आप पर हँसी आई। वह अब कैसे सपने देखने लगा था? कभी शहरों में घूमता था, कभी मोटर में सवार होता था, कभी आकाश में उड़ता था, ऊँची-ऊँची चट्टानें फाँदता था, कभी लम्बी और

बल खाती तथा अनगिनत सीढ़ियों पर से उतरता था। उसे फूल अच्छे लगते थे, चाँदनी भली लगती थी, तारों की छाया प्यारी लगती थी। उसका जी चाहता था कि घास के समतल मैदान देखता रहे। शीतल, मन्द पवन में छाती खोलकर खड़ा होना उसे अच्छा लगता था।

और यों सोचते-सोचते कुलदीप ने देखा—आकाश से एक और तारा टूटा, लेकिन यह तारा दूसरे तारे से न जुड़ सका!

२४

सोहणेशाह सोचता—सतभराई उसके बुढ़ापे का सहारा थी। सतभराई को देखकर उसे राजकर्णी का दुःख भूल जाता। सतभराई अल्लादित्ता खाँ की निशानी थी। अल्लादित्ता खाँ जिसने सोहणेशाह के लिए अपने प्राण त्याग दिए थे, अपने को मिटा दिया था।

सतभराई यदि उसे छोड़कर चली गई तो सोहणेशाह को ऐसा जान पड़ता जैसे वह दीवारों से अपना सिर फोड़ लेगा। एक क्षण के लिए उसे ऐसे अनुभव हुआ, जैसे उसे दोबारा उसी तरह के चक्कर आ रहे हों जो हस्पतालवालों ने टीके लगाकर ठीक किये थे।

यदि उसे इस तूफान का पता होता, सोहणेशाह का रोम-रोम बार-बार शिकायत करता, तो वह क्यों कड़वी दवाएँ पीता? वह दिन में तीन-तीन बार क्यों टीके लगवाता? वह क्यों भटकता? वह दोबारा गाँव लौटकर क्यों जाता? वह अपनी दूध-ऐसी श्वेत दाढ़ी का सम्मान खतरे में डालकर क्यों खण्डहरों में सिर पटकता। यदि उसे पता होता कि उसकी यह दशा होने

वाली है तो वह डाकखाने वालों की क्यों अनुनय-विनय करता, बैंक वालों के आगे हाथ क्यों जोड़ता ?

सोहणेशाह की आँखों के आँसू ही न समाप्त होते। रात-भर वह सतभराई को समझाता रहा और पुचकारता रहा, लाड़ करता रहा, उसके कोमल भावों को उकसाता रहा। उसकी आन्तरिक कुलीनता, उसके नारीत्व को सराहता रहा। आखिर विवश होकर सतभराई ने कह दिया—"ले चलो चचा, तुम्हारा हठ पक्का है। जहाँ तुम्हारा दिल चाहे ले चलो।"

सतभराई ने सोचा कि वह कुलदीप को भूल जाएगी—एक सपने के समान जो आकर बीत जाता है, जैसे कोई राही किसी दूसरे राही से मिलता है तो फिर उनकी राह अलग-अलग हो जाती है, आँधी में जैसे दो तिनके आप-ही-आप इकट्ठे हो जाते हैं और फिर एक झटके से बेबस होकर अलग हो जाते हैं!

बचपन से वह जो विरह-गीत गा रही थी, उसकी वास्तविकता सतभराई को आज पहली बार अनुभव हुई। आज पहली बार सतभराई ने 'माहिये' के गीतों को अपनी पूरी तेजी के साथ हृदय को नोचता हुआ अनुभव किया।

चूने विचाँ दरजाँ नीं,
निक्के-निक्के दुःख माहिया,
बन जाँदियाँ मरज़ाँ नीं...

इस प्रकार के बोल सतभराई के अधरों पर आकर थिरकने लगते।

अभी काफी सवेरा था कि सोहणेशाह सड़क पर जा रहे एकताँगे को ले आया। चुपके-से अपना सामान उसमें रखकर सतभराई और सोहणेशाह कैंप से बाहर निकल आए।

"यहाँ हम अनजानों की तरह आए थे और अनजानों की तरह जा रहे हैं।"—जब कैंप के फाटक में से किसी के कुछ कहे-सुने बिना ताँगा

चूने में दरारें हैं,
और छोटे-छोटे दुःख रोग बन जाते हैं।

गुजर गया तो सोहणेशाह के मुँह से अपने-आप यह वाक्य निकल गया। पोठोहार के किसी मोहल्ले, किसी गॉव मे ऐसे नहीं हो सकता था, गॉव की बेटी पूरे गॉव की बेटी समझी जाती थी। गॉव में यदि कोई पथिक भी दो दिन के लिये ठहरकर जाता तो गॉव वाले दो-चार कदम उसे छोडने के लिये अवश्य आते। सोहणेशाह को याद था कि उसके गॉंव से कौन-कौन लोग लायलपुर गए थे। जाते हुए हर परिवार ने उन्हें कौन-कौन सी भेंट दी थी—मठियाँ, लड्डू और न जाने कितना-कुछ लोगो ने तलकर उनकी गठरियों में रख दिया। आज सोहणेशाह लायलपुर 'मुरब्बों' पर जा रहा था। चार कपड़े जो उसके पास थे, उन्ही के साथ जा रहा था। किसी ने उसे आशीष नहीं दी थी। कई मजदूर जान-बूझकर उसके रास्ते में नहीं खड़े हुए थे, पानी का घड़ा लेकर कोई उसे मोड पर नहीं मिला था, किसी ने उसे फूलों के हार नहीं पहनाये थे। नट आकर सुखों के गीत नहीं गा सके थे, उन्होने कुछ माँगा नहीं था।

किन्तु सतभराई अनजानों के समान नहीं जा रही थी। सोहणेशाह का वाक्य उसके मन में तीर बनकर उतर गया था।

सतभराई क्योंकर अपरिचित जा रही थी! इस कैंप में वह अधमरी आई और एक कली की भॉति खिल उठी। उसने इस कैंप मे पहली बार अपने भीतर आँखमिचौनी खेलती हुई प्यार की तरंगो का अनुभव किया था। उसने अपने भीतर अनन्त खोज का अनुभव किया था। एक पल के लिए उसे अनुभव हुआ था जैसे कोई पथिक अपनी मंजिल पर पहुँच गया हो!

सतभराई सोचती—वह क्यों अपरिचित-सी जा रही थी! एक संसार जैसे उसके जाने पर बीहड़ बन गया था। कैंप का एक छोर जहाँ कभी वह लौटकर नहीं आएगी, उस कैंप में तारों का आलोक मन्द पड़ जाएगा, कोई तेज-तेज डग भरता हुआ नहीं आएगा, कोई आँख उसकी राह नहीं देखा करेगी!

और सतभराई की आँखों में आँसू बार-बार छलकने लगते।

पेशावर के तांगे रावलपिंडी की सड़कों पर अत्यन्त तेज़ चलते हैं। अभी सतभराई अपने-आपको कैंप के बन्धनों से मुक्त नहीं कर पाई थी कि ताँगा स्टेशन पर आ खड़ा हुआ।

मुसलमान कुली हिन्दुओं और सिक्खों के सामान उठाने का भाड़ा कुछ और लेते, और मुसलमानों से कुछ और। सोहणेशाह को अब पैसे से प्यार नहीं रहा था, पानी के समान पैसा बहाता और सतभराई को अपनी बाहों में छिपाए हुए वह प्लेट-फार्म पर जाकर बैठ गया। गाड़ी के आने में अभी समय था।

प्रतीक्षा करते-करते सवेरा हो गया, धूप निकल आई, भीड़ बढ़ती गई। बिजली के एक खम्भे के पास खड़ी सतभराई ने देखा कि सलाखों वाले दरवाजे के बाहर टाँगों के अड्डे के समीप एक गुलाबी पगड़ी वाला इधर-उधर घूम रहा था जैसे किसी को खोज रहा हो, किसी को ढूँढ रहा हो।

"शायद कुलदीप हो!" सतभराई के दिल से जैसे तड़पकर फ़रियाद निकली, किन्तु अगले ही क्षण वह ठण्डी पड़ गई। टाँगों के अड्डे की ओर पीठ करके ट्रंक पर बैठकर उसने सोहणेशाह की पगड़ी का छोर पकड़ लिया, और बार-बार उसे मरोड़ने लगी। सोहणेशाह सिर झुकाकर अपने विचारों में डूबा हुआ था।

वह कितनी देर तक पल्लू मरोड़ती रही, एक लट बार-बार खिसककर उसके पेशानी पर आ गिरती, सतभराई बार-बार उसे पीछे करती, सामने पटड़ी पर रेल के कुछ डिब्बे यूँ ही बेकार खड़े थे, एक मैना छोटे-छोटे तिनके चुनकर उनमें से एक पर अपना नीड़ बना रही थी, एक खुजली का मारा कुत्ता प्लेटफार्म के सिरे पर खड़ा था जैसे गाड़ी की प्रतीक्षा में विकल हो! सोचते-सोचते सतभराई का दिल जैसे सहसा धड़कने लगा, उसके सिर के ऊपर लगी हुई स्टेशन की घड़ी की टिक्-टिक् जैसे और तेज हो गई हो!

आखिर उसने गर्दन घुमाकर देखा—गुलाबी पगड़ी वाला कहीं भी नहीं था। फिर उसने एड़ियाँ उठाकर किसी को ढूँढना आरम्भ कर दिया, और वह पगड़ी जो कल कुलदीप ने बाँधी हुई थी कहीं दिखाई न दी।

सामने सलाखों वाले द्वार में से परमेसरी आ रही थी, उसके साथ अमरीका था। अमरीके ने सिर पर दो ट्रंक उठाए हुए थे, वह कुछ समय के लिए परमेसरी की ओर ललचाई हुई दृष्टि से देखता रहा और फिर पगड़ी उतारकर खुजली मारे कुत्ते के पीछे भागने लगा। आखिर दौड़-दौड़-कर उस पगड़ी से कुत्ते को बाँध कर ले आया। बार-बार उसे 'डब्बू-डब्बू' कहकर पुकारता, और कभी-कभी पुचकारता।

परमेसरी पूड़ियाँ खा चुकी, तो मिठाईवाले के पास जा खड़ी हुई। मिठाई से जब उसका जी भर गया तो फल खाने लगी। रेढ़ी वाले के साथ हँसती भी जाती और तड़ाख-तड़ाख बातें भी करती जाती। कभी-कभी किसी टोकरी में से फल भी उठाए जाती।

आखिर परमेसरी ने एक पैसे की गँडेरियाँ देकर अमरीके को वहाँ से विदा कर दिया। अमरीका वहाँ से हँसता हुआ कुत्ते को गले से लगाए हुए भाग गया।

इतनी देर में गाड़ी आगई। सतभराई और सोहणेशाह शीघ्रता में नौकरों के कमरे में जा घुसे, अन्दर बैठा हुआ अंग्रेज का बैरा बहुत चीखा-चिल्लाया, तेज हुआ, शिकायत करने की धमकियाँ देता रहा। सोहणेशाह ने आखिर एक बात उससे कही—"अबे भलेमानुस! हम क्या कभी किसी गाड़ी में चढ़े हैं?" और बैरा चुप हो गया। फिर बैरे ने उन्हें समझाया कि वे द्वार और खिड़कियाँ बन्द कर दें वरना और यात्री आ जाएँगे—और वह कमरा इतना छोटा था! बैरे ने केवल एक खिड़की खुली रहने दी और उस पर भी शीशा चढ़ा दिया—"हम अब बाहर के आदमियों को देख सकते हैं और बाहर वाले हमें नहीं देख सकते!" बैरे ने सोहणेशाह को बतलाया।

सोहणेशाह बैरे की बातों पर आश्चर्य करता रहा! सतभराई भी सोचती कि ये शहरी लोग कितने चतुर होते हैं? कोई और भाई विपत्ति का सताया हुआ इस कमरे में आ घुसे तो उसका क्या बिगड़ता था! चाहे स्थान कम था, किन्तु क्या किसी ने गाड़ी में घर बनाना था? एक-दो घड़ी

ही काटनी थीं, और वह कष्ट से भी गुजर जाती और सुख से भी !

सतभराई सोच रही थी कि उसके सामने तेज तेज डग भरता हुआ, मछली के समान तड़पता हुआ कुलदीप किसी को ढूँढ रहा था। खोजता हुआ वह आगे निकल गया, इनका कमरा कोई कमरा थोड़ा ही था, यूँ ही अमीरों के नौकरों के लिए साधारण-सा स्थान था। कुलदीप ने उस कमरे की ओर ध्यान न दिया, और यदि वह ध्यान भी दे देता तो शहरी बैरे ने अभी कहा था कि बाहर वाले भीतर नहीं देख सकते। उस शीशे में से अन्दर वाले लोग ही बाहर की वस्तु देख सकते थे। पूरी गाड़ी देखता कुलदीप फिर वापस आया, सतभराई अपने स्थान पर इस तरह टिकी बैठी थी कि खिड़की में से केवल वही बाहर घूमते हुए लोगों को देख सकती थी, अन्दर के अन्य लोग नहीं। सोहणेशाह अब फिर अपने विचारों में डूब गया था। सिर झुकाकर न जाने क्या कुछ सोच रहा था।

तेज-तेज कदम, फटी-फटी आँखें, अत्यन्त विकलता में कुलदीप फिर पास से गुजर गया। इस बार तो खिड़की से उसका कंधा भी छू गया।

सतभराई अवाक्-स्तब्ध वैसी की वैसी अपने स्थान पर बैठी रही।

कुलदीप के वहाँ से गुजर जाने के थोड़े समय बाद सतभराई ने सोचा—यदि वह फिर इस ओर आया, यदि वह इस खिड़की के पास से गुजरा तो चुपके-से द्वार खोलकर बाहर चली जाऊँगी और समझा दूँगी—

"कुलदीप ! मुझे माफ़ कर देना ! मैं चचा का कहा नहीं टाल सकती, तुमसे बेहद शर्मिंदा हूँ, चोरों की तरह भाग कर आई हूँ !"

और फिर सतभराई फूट-फूटकर रोने लगी।

आखिर वह खिड़की के पास जा बैठी।

कुछ समय बाद उसने शीशे का पट भी खोल दिया, किन्तु कुलदीप फिर उधर से न गुजरा। घण्टी बजी, सीटी बजी, झंडी हिली और गाड़ी चल पड़ी !

२५

कैम्प में लौटकर कुलदीप का एक तो यह जी चाहा कि वह धड़ाम से चारपाई पर गिर पड़े, मूर्छित हो जाए, डॉक्टर आएँ, दवाइयाँ दें, लोग इकट्ठे हों, उसकी नब्जें डूब जाएँ, दिल की धड़कन बन्द हो जाए, हाथ मलते और अफ़सोस करते हुए किसी की समझ में न आए कि उसे क्या हुआ था।

"लेकिन बर्बाद हुए लोग यूँ नहीं किया करते, हमें अपने पाँवों पर स्वयं खड़ा होना है!" एक शरणार्थी नेता के शब्द उसके कानों में गूँजने लगे—

और कुलदीप अपने तम्बू में से बाहर निकल आया—

"हमें अपने पाँवों पर आप खड़ा होना है! हमें अपने पाँवों पर आप खड़ा होना है!! हमें अपने पाँवों पर आप खड़ा होना है!!!" बार-बार उसे कोई याद दिला रहा था; और पहले से भी अधिक लगन के साथ; वह काम में जुट गया।

दिन बीत गया—

और फिर सारा कैम्प पटियाले अथवा फ़रीदकोट जाने की तैयारी में जुट गया।

कैम्प में बूढ़े थे जिनके बिस्तर किसी को बाँधने थे, जिनके बिस्तरों की किसी को रक्षा करनी थी; विधवाएँ थीं जिन्होंने दोबारा कुछ चीथड़े इकट्ठे कर लिये थे, और स्त्री कब कोई कपड़ा छोड़ सकती है! कई शरणार्थी सरकारी वस्तुएँ लौटा देना चाहते थे, उन वस्तुओं को लेकर जमा करवाना था। कई शरणार्थी सरकारी वस्तुएँ साथ ले जाना चाहते थे, उनसे वे वस्तुएँ प्राप्त करनी थीं।

पोठोहार की हवा छोड़कर जाते हुए, पोठोहार का पानी छोड़कर जाते हुए, पोठोहार की मिट्टी छोड़कर जाते हुए, पोठोहार में बसने वाले बहुत से बूढ़ों के माथे पर बार-बार पसीना आ जाता, बार-बार उनके हाथ-पाँव ठण्डे होने लगते।

सारे कैम्प में एक कोलाहल था, एक शोर-सा था। लोग एक-दूसरे को आवाजें दे रहे थे, झुँझला रहे थे; बच्चों ने चीत्कार मचा रक्खा था। कई सरकारी अफ़सर प्रसन्न थे कि चलो यह झंझट भी समाप्त हुआ, दुःख से छुटकारा हुआ; किन्तु कई आपस में काना-फूँसी कर रहे थे कि जिस प्रकार भी सम्भव हो इन लोगों को यहीं रख लिया जाए। शरणार्थियों के कारण उनकी जीविका भी बनी हुई थी, कैम्प में काम करने के कारण उन्हें कई प्रकार की सुविधाएँ थीं, कपड़ा मिल जाता, दूध मिल जाता, अनाज मिल जाता, दवा मिल जाती।

रावलपिण्डी के राजनैतिक दलों के नेता सोचते कि जाने से पहले एक जलसा किया जाए। कांग्रेस वालों ने स्वयं निर्णय किया और मुस्लिम लीग वालों ने अलग तथा अकालियों ने अपना ही।

किन्तु गाड़ी सायंकाल जाने वाली थी और गिनती के घण्टे शेष रह गए थे। अलग-अलग जलसा करने की सरकार ने भी आज्ञा नहीं देनी थी—इसलिये डिप्टी-कमिश्नर से मिलकर यह निर्णय हुआ कि जलसा एक

ही किया जाए, जिसमें हर संस्था और प्रत्येक दल का एक प्रतिनिधि हो। प्रत्येक नेता कह रहा था कि जलसा अवश्य होना चाहिये, विदाई के भाषण दिये जाएँ !

आखिर जलसा हुआ—रावलपिण्डी के जिले का डिप्टी-कमिश्नर इस जलसे का सभापति था। वही डिप्टी-कमिश्नर जिसके समय में प्रलय मची, यह तूफ़ान उठा।

सबसे पहले मुस्लिमलीग का एक नेता बोला—अपने भाषण में मौलवी साहब ने बार-बार इस बात पर जोर दिया कि "मुस्लिम-लीग पाकिस्तान जरूर बनाना चाहती थी, किन्तु पाकिस्तान में प्रत्येक धर्म के लोग रह सकते थे—पाकिस्तान एक लोक-रियासत होगी; इस्लामी रियासत नहीं होगी कि जिसमें ग़ैर-मुस्लिम को केवल मुस्लिम बनने पर रहने का अधिकार दिया जायगा। लेकिन अब क्योंकि तुमने जाने का संकल्प कर लिया है, इसलिये मेरे हिन्दू और सिक्ख हमवतनो ! मेरी यह दुआ है कि तुम जहाँ भी जाओ खुश रहो ! जहाँ जाकर तुम आबाद होवो, वहाँ तुम्हें अपने वतन की हवा आती रहे। नाखून से गोश्त कभी अलग नहीं होता, चोली दामन का साथ कभी नहीं छूटता, हम फिर मिलेंगे, मुझे यकीन है कि हम ज़रूर मिलेंगे, खुदा हाफिज !" इन वाक्यों के साथ मौलवी साहब ने अपना भाषण समाप्त किया।

उसके बाद हिन्दूमहासभा का एक नेता बोला, जिसकी राय में हिन्दू और सिक्ख कम गिनती वाले प्रदेश से जा रहे थे। वे अपने पीछे रहने वाले भाइयों के लिये उस जगह रहना कठिन बना रहे थे, क्योंकि अब उन्होंने यहाँ से चले जाने का निर्णय कर लिया था, इसलिये इसके अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं था कि उन्हें प्रार्थनाओं के साथ विदा किया जाए।

अकाली नेता ने कहा—"जहाँ हम जाएँगे वहीं पोटोहार बन जाएगा। जिन लोगों में हम जाकर रहेंगे, वहाँ अच्छे रहन-सहन, अच्छे और सुथरे जीवन का उदाहरण बनकर रहेंगे। हमें तात्कालिक दुःखों से ऊपर उठे रहना चाहिये, हमें सदैव ऊँचाई की ओर उड़ते रहना चाहिये। हम तो प्रतिदिन

साँझ-सवेरे यही गाते हैं—राज करेगा खालसा, आकी रहे न कोय! हम गुरु गोविन्दसिंह के इस स्वप्न पर फूल चढ़ाते हैं, हम सम्पूर्ण संसार का भला चाहते हैं!"

कांग्रेस का नेता सबसे अन्त में उठा—उसने गांधीजी की अहिंसा की चर्चा की, प्रसिद्ध काँग्रेसी नेताओं के भाषणों में से सुन्दर उद्धरण सुनाए, हिन्दुस्तान के प्रति श्रद्धा प्रकट की। यह बताया गया कि अमुक प्रसिद्ध नेता की इन फ़िसादों के सम्बन्ध में क्या सम्मति थी। यह बताया गया कि हिन्दुस्तान कितना महान् देश है, बाहर के देश इस देश की ओर किस तरह गर्व-भरी आँखों से देख रहे थे, हिन्दुस्तान ने संसार-भर में शान्ति-स्थापना के लिये क्या-क्या कुछ करना था!

और डिप्टी-कमिश्नर ने गोलमोल बातों से जलसे की समाप्ति की।

सारा दिन कैम्प के कामों में व्यस्त रहने वाला कुलदीप जैसे सब-कुछ भूल गया, किन्तु लारियों में सामान लाद देने से पहले जो उसे एकाध घण्टे का अवकाश मिला, उसमें वह दोबारा उन्हीं उलझनों का बन्दी हो गया।

लायलपुर किसी अन्य दिशा में था और पटियाला किसी अन्य; और किसी को यह ज्ञात नहीं था कि सतभराई लायलपुर ही गई थी, सोहणेशाह ने चाहे राय बदल ली हो! यदि वह मुझे स्टेशन पर मिल जाती तो मैं उसका दिल टटोलकर देख लेता; फिर चाहे मैं उम्र-भर उसकी प्रतीक्षा करता रहता···इस प्रकार केवल एक रात में कोई क्योंकर बदल सकता है! कोई अपने वचन और प्रतिज्ञाएँ क्योंकर भूल सकता है? मेरा विचार था कि राख में से फूल-पत्ते उग पड़ेंगे, मैंने खँडहरों की वीरानी में गीत सुनने की चेष्टा की, मैंने नक्षत्रों की गति बदलनी चाही!

नहीं, नहीं, नहीं, मैं उससे अवश्य मिलूँगा। मैं पटियाले नहीं जाऊँगा, पटियाले में मेरा कौन है? मैं लायलपुर जाकर भी वही कुछ कर सकता हूँ जो कुछ पटियाले में। लायलपुर की मैं गली-गली छान मारूँगा, गाँव-गाँव ढूँढूँगा, लायलपुर में मेरा चचेरा भाई······

किन्तु मैं अब वही क्यों सोच रहा हूँ जो शायद सतभराई को स्वीकार

न हो ! यदि कोई बात होती तो वह एक पल के लिये आकर मुझे अवश्य धैर्य दे जाती, मुझे समझा जाती, मुझे अपनी बेबसी से सूचित कर जाती ।

इतनी देर में लारियाँ आ गईं, लोग फ़र्राटे भरते हुए उन पर चढ़ गए । उन्हें लाख समझाया गया कि जाना तो सभी को है, लारियाँ किसी को छोड़ नहीं जाएँगी, किन्तु कैम्प से उकताए हुए लोग कब मानने वाले थे । लारियों की पंक्तियों ने कई फेरे लगाए, तब कहीं जाकर कैम्प खाली हुआ । कुलदीप और उसके साथी स्वयंसेवकों ने दुर्बलों की, बूढ़ों की और ज़रूरत वालों की हर प्रकार से सहायता की—सामान चढ़ाने में, उतारने में, कन्धों पर उठा-उठाकर बहुतों को लारियों में बिठाया जाता और बहुतों को लारियों से उतारा जाता ।

जाते हुए शरणार्थी अपने-अपने तम्बू में झाड़ दे गए । टूटे हुए हुक्के, टूटे हुए पंखे, गोरों की बैरकों पर से उठाए हुए टीन और छोटे-छोटे डिब्बे, बोरियों के फटे हुए टुकड़े, तम्बू के कतरे हुए टाट, रस्सियाँ, बेकार खूँटे, अखबारों की रद्दी, पुरानी दुर्गन्ध से भरी रजाइयाँ, घिसे हुए बर्तन, टूटे हुए चूल्हे, फूँकनियाँ, चिमटे ! और एक अधेड़ आयु की स्त्री को कुलदीप ने देखा जो गोबर अपने साथ लेकर चल पड़ी थी, ताकि मार्ग में या ठिकाने पर पहुँचकर स्थान लीप-पोतकर रोटी पका सके ।

और ऐसे शरणार्थी भी थे जो चलते समय पोठोहार की मिट्टी साथ ले गए । कोई उस मिट्टी को आँखों से लगाने के लिए, कोई मस्तक से स्पर्श करने के लिए । अपने देश की मिट्टी, वह मिट्टी जिसमें कोई उत्पन्न हुआ हो, जन्मा हो । सोहणेशाह ने भी यूँ ही किया । सतभराई की आँखें बचाकर अपने प्रदेश की मिट्टी मुट्ठी भरकर एक वस्त्र में बाँध ली ।

लोग अपने देश की यादगार, पोठोहारी जूतियाँ साथ ले जा रहे थे, पोठोहारी लुँगियाँ साथ ले जा रहे थे । पोठोहार की यादगार मधु से मधुर वाणी भी अपने साथ ले जा रहे थे; मालवे के प्रदेश में जाकर संगीत का-सा जादू करने के लिए ।

पोठोहारनें अपना प्रदेश छोड़कर जा रहीं थीं; ऊँचे क़द की, मोटी-

मोटी आँखों वाली, जिनके सिरों पर दुपट्टे ढुलक-ढुलक पड़ते थे। पोठोहारी पुरुष जा रहे थे—पुनर्जीवित होने के लिए, दोबारा उभरने के लिए, दोबारा आबाद होने के लिए, महान् धारणाएँ लिए हुए! पोठोहारी बालक जा रहे थे, छोटे-से-बड़े होने के लिए, बड़े होकर महान् कार्य करने के लिए।

गाड़ी रात गए आई थी। पोठोहारियों का कैम्प स्टेशन पर इस प्रकार इकट्ठा था जैसे किसी ने शहद की मक्खियों का छत्ता छेड़ दिया हो। मिठाई वालों के थाल खाली हो गए, आलू-चने वाले कभी के अवकाश पाकर आरामपूर्वक बैठ चुके थे। फलों की रेढ़ियाँ, छेबे, अखबार, पुराने रूमाल, मक्खियों की गन्दी की हुई पुरानी पुस्तकें प्रत्येक वस्तु पर ये शरणार्थी भूखों के समान टूट पड़े।

× × ×

"ओ भापा, क्या हाल है?"

"अच्छा हाल है भाई!"

× × ×

"अरी! मैंने मूँगफली मँगवाई थी, लेकिन लड़के ने अच्छी भुनी हुई नहीं दी!"

"हाँ री! मेरे चनों में भी कंकर-ही-कंकर थे, मैंने तो कव्वों को खिला दिये!"

× × ×

"ओ रामिआँ! ओ दोस्त इधर आ, अड्डी-टप्पा खेलें!"

"जा वे जा! मैं लड़कियों के खेल नहीं खेलता!"

× × ×

और इस प्रकार की बातें सुनकर आते-जाते पथिक सोच रहे थे कि ये किस प्रकार के शरणार्थी थे! पुरुष, स्त्रियाँ और बच्चे!!!—

तीसरा भाग

२६

सतभराई हैरान थी कि यह गाड़ी कैसे चलती है ! कुछ समय चलती और फिर खड़ी हो जाती, कुछ देर चलकर फिर खड़ी हो जाती।

रावलपिंडी से तो ठीक चली थी। बहुत-से स्टेशनों पर रुकी और कई स्टेशनों पर न रुकी। जेहलम तक बेखटके आ गई, जेहलम से निकलते ही लगभग चार मील की दूरी पर खड़ी हो गई। लोगों ने बाहर झाँक-झाँककर देखा—किसी की समझ में कुछ न आता। दस मिनट तक खड़ी रहकर फिर चल पड़ी और पाँच मील के बाद फिर खड़ी हो गई। यात्रियों ने देखा कि गार्ड दौड़ता हुआ एक डिब्बे की ओर आया, वहाँ एक भीड़ लगी हुई थी। इस प्रकार कोई आध घण्टे तक कोलाहल मचा रहा—गाड़ी फिर चल पड़ी, इस बार लगभग पचास गज ही चल पाई होगी कि फिर 'चीं-चीं' करती हुई रुक गई। फिर शोर उठा। फिर लोग दौड़-दौड़कर उस कमरे की ओर गए, फिर गार्ड उधर दौड़ता हुआ गया।

सतभराई के होश उड़ गए, जब उसने "पाकिस्तान जिन्दाबाद" के

नारे लगते हुए सुने। गाड़ी रुकी रही, रुकी रही, नारे और ऊँचे लगते रहे। सोहणेशाह के चेहरे पर ठीक वही आतंक छा रहा था जो उसके पागल हो जाने के दिन सतभराई ने देखा था! अंग्रेज अफ़सर का बैरा जब साथ के कमरे में मालिक से मिलने गया तो सोहणेशाह पसीने-पसीने हो गया। सोहणेशाह ने क्या कुछ नहीं देखा—ईश्वर उसे और क्या दिखाना चाहता था? दिल-ही-दिल में ईश्वर से प्रार्थनाएं कर रहा था, हाथ जोड़ रहा था, अमृतसर और हरिद्वार के स्नान की सौगन्ध उठा रहा था, दरिद्रों और अनाथों की सहायता के बारे में सोच रहा था।

गाड़ी बीहड़ में खड़ी थी। 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे ज्यों-ज्यों ऊँचे होते जाते, त्यों-त्यों भीड़ बढ़ती जाती।

सतभराई के चेहरे पर निराशा की छाप देखकर सोहणेशाह पछताने लगा कि वह उसे कुलदीप से क्यों छीनकर ले आया था—सतभराई कितना बड़ा उत्तरदायित्व थी!

इतने में हाथ में पिस्तौल पकड़े हुए मुसलमान बैरा लौट आया—

"चचा, तुम रत्ती-भर फ़िक्र न करो और बहन, तू भी निश्चिन्त रह। इंशाअल्ला तुम्हारी ओर कोई आँख टेढ़ी करके नहीं देख सकेगा।" और फिर उसने बताया कि उसके मालिक के पास सरकारी राइफ़ल है जिसे भरकर वह साथ की खिड़की में बैठा हुआ था; और जो पिस्तौल उसके हाथ में थी उसमें पूरी सात गोलियाँ थीं और बहुत-सी गोलियाँ उसकी जेब में थीं।

वह खिड़की के पास सतभराई वाली जगह पर आकर बैठ गया—

"पाकिस्तान ज़िन्दाबाद" के नारे और ऊँचे होते जा रहे थे। "ले के रहेंगे पाकिस्तान" के नारे और ऊँचे उठ रहे थे—फिर कुहराम मच गया।

"खिज़र-वज़ारत तोड़ दो! खिज़र-वज़ारत तोड़ दो!!"

और बैरे ने उस समय सोहणेशाह तथा सतभराई को समझाया— "कहते हैं आजकल कोई खिज़र पंजाब का मन्त्री है और मुस्लिम लीग वाले उसके स्थान पर किसी दूसरे को मन्त्री बनाना चाहते हैं। ससुरों से यह पूछो कि हम गरीबों को इससे क्या? हमें क्यों खराब करते हो? यदि एक नवाब

गद्दी से उतरेगा तो दूसरा नवाब उस गद्दी पर बैठ जाएगा; हमें क्या ?"

सोहणेशाह को याद आगया कि इस प्रकार का झगड़ा उसने अखबार में भी पढ़ा था—

"एक जागीरदार नहीं रहेगा तो दूसरा आ जाएगा। एक रईस नहीं रहेगा तो दूसरा आ जाएगा, लोगों का रक्तपान करने का क्रम तो ज्यों-का-त्यों रहेगा !"

सतभराई हैरान थी कि बड़े लोगों में रहकर बैरे की आँखें किस प्रकार खुल गई थीं ?

इतनी देर में कोलाहल ठंडा पड़ गया, गाड़ी ने सीटी दी और फिर चल पड़ी।

सोहणेशाह ने ईश्वर को लाख-लाख बार धन्यवाद किया, सतभराई ने एक सन्तोष की साँस ली, बैरे ने सोचा—ईश्वर ने उसका मान रख लिया।

गुजरात पहुँचने तक शाम हो गई, न जाने कितनी बार गाड़ी को रुकना पड़ा, कितनी बार बिल्कुल वैसा ही शोर मचा। कितनी बार डिब्बों में बैठी हुई सवारियों के दिल धड़के, पसीने आए, ईश्वर के आगे दयादृष्टि के लिये हाथ पसारे गए।

बात वास्तव में यह थी कि रास्ते के स्टेशनों पर गाड़ी में कुछ ऐसे लोग आकर बैठ गए, जो जब जी चाहता—गाड़ी की जंजीर खींचकर उसे खड़ी कर लेते। न किसी के समझाने पर वे कुछ समझते, न किसी के रोकने पर वे रुकते, सारा समय वे इस प्रकार की बाधा डालते रहे।

गाड़ी गुजरात के स्टेशन पर खड़ी रही, खड़ी रही। पुलिस आई, रेलवे के कर्मचारी आए। जंजीर खींचने वालों से लोग कुछ इस प्रकार भयभीत थे कि कोई यह बताने का साहस न करता कि जंजीर किसने खींची थी। पुलिस ने डराया, धमकाया, किन्तु व्यर्थ !

कई गाड़ियाँ उधर से आईं और गुजर गईं, किन्तु इस गाड़ी में कुछ ऐसा झगड़ा हुआ कि रात हो गई।

आखिर पूछते-पूछते, खोज लगाते-लगाते, पुलिस को पता चल गया

और शरारत करने वालों के तीन-चार व्यक्ति उन्होंने बन्दी बना लिये। इस बात पर बहुत ही शोर मचा, असंख्य नारे लगाए गए, किन्तु बन्दूक ताने हुए सिक्ख थानेदार उन्हें बन्दी बनाकर ले गया। अभी शोर कम नहीं हुआ कि गाड़ी चला दी गई।

शरारत करने वाले मुसलमान युवकों को सन्देह था कि किसी हिन्दू या किसी सिक्ख ने शिकायत कर दी थी। ज्यों-ज्यों गाड़ी चलती गई उनका सन्देह क्रोध में परिणत होता गया। स्टेशन से गाड़ी निकली ही थी कि परस्पर तू-तू मैं-मैं हो गई, लगभग दो मील तक परस्पर खिंचाव बढ़ गया। 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगने लगे और इन नारों के जवाब में सिक्ख गाने लगे—"राज करेगा खालसा, बाकी रहे न कोय!" और हिन्दू यह कोलाहल उठा रहे थे—"हिन्दी, हिन्दू, हिन्दुस्तान।"

गाड़ी के प्रत्येक डिब्बे में पार्टियाँ बन गईं और लोग दो दलों में बँट गए, एक-दूसरे की ओर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगे। यदि मुसलमान खिज़रहयात खाँ को बुरा कहते तो हिन्दू और सिक्ख ममदोट को गालियाँ देने पर उतर आए। सैकिण्ड क्लास के डिब्बे में असूल पर विवाद छिड़ गया। मुसलमान कहते थे कि पंजाब में मुस्लिम लीग ही अकेली सबसे बड़ी पार्टी है, हिन्दू और सिक्ख कहते कि लोगों की अधिक संख्या तो खिज़र-हयात के साथ है। मुसलमान न्याय पर ज़ोर देते और हिन्दू तथा सिक्ख बार-बार सिद्धान्त स्मरण करवाते। इंटर क्लास और थर्ड क्लास के डिब्बों में गाली-गलौज आरम्भ हो गई।

रात पूरे यौवन पर थी, काली और अँधेरी रात!

आखिर लाइन के साथ मुसलमानों के एक गाँव के समीप पहले गाड़ी धीमी हुई और फिर खड़ी हो गई।

गाड़ी के रुकते ही "पाकिस्तान जिन्दाबाद" के गगनभेदी नारे लगने आरम्भ हुए। साथ के मुसलमानी-गाँव में से पहले एक आवाज़ आई, फिर एक और, फिर एक और, आखिर धीरे-धीरे सारा गाँव गंडासे, नेजे, बेलचे, बन्दूकें और बारूद लेकर गाड़ी पर टूट पड़ा। मारधाड़ आरम्भ हो गई।

अंग्रेज़ अफसर अपने कमरे में बन्दूक सीधी करके बैठा रहा। अंग्रेज़ अफसर का मुसलमान बैरा सात गोलियों वाला पिस्तौल पकड़े सोहणेशाह और सतभराई को हौसला देता रहा।

सोहणेशाह ने फिर बच्चों के क्रन्दन सुने, बूढ़ों के चीत्कार सुने, नौजवानों की हृदयविदारक 'हाय' उसके कानों में पड़ी; स्त्रियों की अनुनय-विनय और दया के लिए भीख की आवाज़ बार-बार ऊँची उठती और बार-बार डूब जाती।

ऐसे मालूम होता था जैसे फिसादियों ने सारी गाड़ी का अनुमान लगाया हुआ है। कोई भी व्यक्ति अंग्रेज़ अफसर और उसके बैरे के कमरे की ओर न फटका।

सतभराई ने बन्दूकें चलती हुई सुनीं। सतभराई ने आवाज़ों से, चीत्कारों से अनुमान लगाए कि कब किसी पर छुरी से वार किया गया था, कब किसी को नेज़े से छलनी किया गया था, कब किसी को गँड़ासे से काटा गया था, कब किसी स्त्री के सतीत्व पर हाथ डाला गया था, कब किसी बच्चे को उसकी माँ की छाती से अलग करके धरती पर पटका गया था, नेज़े पर उछाला गया था।

मारधाड़ के पश्चात् फिसादियों ने सन्तोषपूर्वक हिन्दू सिक्ख यात्रियों का माल-असबाब उतारा। लाशों के टुकड़ों को दोबारा गाड़ी के डिब्बों में फेंका। गाड़ी में जाते हुए फिसादियों को उनका भाग देने का वचन दिया। अच्छी प्रकार सफाई के बाद 'खुदा हाफिज़' करते हुए उन्होंने ड्राइवर को गाड़ी चलाने के लिए कहा। सदा की भाँति पहले गाड़ी ने सीटी दी और फिर भक्-भक् धक्-धक् करती हुई चल पड़ी। अभी गाड़ी लगभग पचास कदम गई होगी कि सतभराई की दृष्टि सहसा गाड़ी के बाहर जा पड़ी—दुपट्टे से मुँह और हाथ बाँधे हुए एक नौजवान लड़की को कन्धों पर डाले हुए एक फिसादी गाँव को वापिस जा रहा था। रक्त में रंगे हुए उसके फौजी बूट उसके पीछे चिह्न छोड़ते जा रहे थे, बड़े-बड़े ताज़ा खून के निशान जो कुछ देर में मद्धम पड़ जाते, फिर बुझ जाते। कन्धों पर रूप का बोझ उठाए

हुए फ़िसादी किस हौसले से क़दम उठा रहा था !

फ़िसादी सोच रहा था कि उस नौजवान लाल-गोरी कँवारी लड़की को अपने घर ले जाय, जैसे अन्य फ़िसादी अपना-अपना माल अपने घर ले गए थे या फिर वह और क्या करे ? उसके घर में उसके बच्चों की माँ थी, उसके बच्चे थे, बिल्कुल उस लड़की-ऐसी एक भरपूर नौजवान लड़की थी। फ़िसादी सोच रहा था—उसके पल्ले अपने बच्चों, अपनी पत्नी का पेट भरने तथा तन ढाँपने के लिए कुछ नहीं था। एक और मुँह वह अपने घर में क्यों ले जाय ? फ़िसादी सोच रहा था कि सारी आयु वह बच्चों का बाप बनते-बनते थक गया था, उसके दामन से बँधी हुई उसकी पत्नी अभी तक उसकी प्रतीक्षा में होगी। फौज में जहाँ कहीं भी वह गया, उसने पराई स्त्रियों का स्वाद भी जी-भरकर चख लिया था, और अन्त में वह इसी परिणाम पर पहुँचा था कि यह काम कुत्ते की हड्डी के समान है। इसका परिणाम लज्जा और अपमान के अतिरिक्त और कुछ नहीं था। और वह सोचता—उस लड़की को उसने क्यों अपने अंक में भर लिया था, उसका कन्धों जितना ऊँचा 'टोका' उस लड़की की गरदन पर क्यों नहीं चला था, उस लड़की की दृष्टि में क्या था, जिसे अनुभव करते हुए उसके हाथ-पाँव फूल गए थे ? फिर उसने उसका मुँह बाँधा, फिर दुपट्टे से उसने उसके हाथ बाँधे। जब लोग सोना, वस्त्र, और तरह-तरह की दूसरी वस्तुएँ लूटते रहे, वह उस लड़की को कन्धों पर उठाए हुए देखता रहा, देखता रहा। गाड़ी ने सीटी दी, गाड़ी चल पड़ी; फिर भी वह रुधिर के एक गढ़े में खड़ा था। फिर सहसा वह घर की ओर चल पड़ा। उसके खून में लिथड़े पाँवों के निशान धरती पर अंकित हो रहे थे। उसके कन्धों पर का यह बोझ था या उसके हृदय का बोझ था कि वह नपे-तुले क़दम उठा रहा था, सोच-सोचकर, फूँक-फूँककर।

फ़िसादी सोचता कि वह उस लड़की का क्या करे जिसे वह अपने अंक में भर चुका था !

"इसको बेटी बना लें !"

"उसके पहले ही बहुत-सी लड़कियाँ थीं।"

"उसे अपनी पत्नी बना ले!

"अब वह अपनी सफेद दाढ़ी में क्यों धूल डाले?"

"वह उसे यहीं फेंक दे!"

"एक दुखियारिन को एक फौजी क्योंकर अकेली छोड़ सकता था?"

"फिर वह क्या करे!

फिर वह क्या करे!!

फिर वह क्या करे!"

आखिर उसे मस्जिद के मौलवी के वे वाक्य स्मरण हो आए जो उसने पिछले शुक्रवार को प्रार्थना के समय कहे थे—काफिरों की दौलत लूटना, काफिरों की बेटियों और बहनों को छीनना, काफिरों के घरों को आग लगाना काफिरों का नामोनिशाँ मिटाना सवाब है। और फिसादी ने संकल्प किया कि वह उस लड़की को मौलवी साहब के हवाले कर देगा! तब आप-ही-आप उसके पाँव मस्जिद की ओर उठने लगे, आप-ही-आप उसकी गति तीव्र हो गई!

२७

अगले दिन लाहौर के मुसलमान अखबारों ने इस प्रकार की खबर प्रकाशित की—

एक मुसलमान बैरे की वीरता!

मुसलमान कैसे अपनी जान पर खेल सकते हैं।

मुसलमान बैरे ने अपने अंग्रेज मालिक के पिस्तौल से एक सिक्ख-लड़की और उसके बूढ़े बाप को रात-भर जागकर बचा लिया।

"रावलपिंडी की ओर से आने वाली गाड़ी में जब हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे को प्रत्येक डिब्बे में कत्ल कर रहे थे, एक-दूसरे का माल लूट रहे थे, एक मुसलमान पिस्तौल पकड़े हुए एक सिक्ख-सुन्दरी और उसके पिता की रक्षा कर रहा था। रावलपिंडी से आती हुई एक गाड़ी में 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे लगाने पर विरोध किया गया, एक और हिन्दू-मुस्लिम फिसाद! सिक्खों ने मुसलमान यात्रियों पर तलवारों से आक्रमण कर दिया। अपने सामने अपने मुसलमान भाइयों को कत्ल होता हुआ देखकर पाकिस्तान के

एक परवाने का दिल डांवाडोल न हुआ, एक भरपूर जवान सिक्ख-लड़की और उसके पिता के लिए डटा रहा।"

सतभराई, सोहणेशाह और उस वैरे के चित्र सब मुसलमान अखबारों ने प्रकाशित किये। हिन्दू और सिक्ख अखबारों ने सत्य पर जितना रंग चढ़ाना चाहा, चढ़ाया और फिर अत्यन्त कारुणिक तथा विषैले ढंग में यह बात बताई।

पोठोहार की घटना फिर दुहराई गई।

मुस्लिम लीग की गुण्डागर्दी का एक नग्न चित्र !

हिन्दू और सिक्खों से भरी हुई सारी गाड़ी को रुधिर से रंग दिया गया। रात के अँधेरे में गुजरात के पास मुसलमानों के गाँव ने 'डाऊन ट्रेन' को लूट लिया। हिन्दू और सिक्ख यात्रियों को एक-एक करके कत्ल कर दिया गया; अनुमान लगाया जाता है कि लगभग पाँच हज़ार निर्दोष हिन्दू और सिक्ख शहीद हुए। बच्चों को नेज़ों पर उछाला गया, मुस्लिम-लीगियों के पागलपन ने स्त्रियों का नंगा नृत्य फिर देखा, सारी गाड़ी में एक भी हिन्दू-सिक्ख न बच पाया।—'जिस प्रकार हिन्दू-सिक्खों को मारा गया, इस प्रकार जानवरों को भी कोई नहीं मारता !'—एक अंग्रेज़ महिला का वक्तव्य। पंजाब के हिन्दू के गौरव की परीक्षा ! सिक्खों को मुस्लिम-लीगी गुण्डागर्दी ने फिर ललकारा !! क्या हम चूड़ियाँ पहनकर बैठे रहेंगे ? हिन्दू और सिक्ख अपनी रक्षा के लिए सजग हो जाएँ !!!

इन खबरों के साथ हिन्दू-सिक्ख समाचार-पत्रों ने अपने महान् नेताओं के वक्तव्य भी प्रकाशित किये, जिनमें उन्होंने जिस तरह हो सके उस तरह से लोगों को भड़काया था।

ये समाचार लोगों के हाथों में पहुँचे ही थे कि लाहौर में छुरेबाजी आरम्भ हो गई, अमृतसर में आग लगाई जाने लगी।

सोहणेशाह और सतभराई को लाहौर में उतरना पड़ा था। सोहणेशाह ने सोचा कि 'शहीदगंज' के दर्शन कर चलें। और फिर शहीदगंज से वह निकल न सका।

सोहणेशाह को शहीदगंज में वह कुआँ दिखलाया गया, जिसमें मुसल-मानी-राज्य के समय सिक्खों को जीवित फेंक दिया जाता था। कुँए की तह में से बच्चों, बूढ़ों और जवानों की निकाली हुई अस्थियों को शीशे की अल्मारियों में रक्खा गया था। एक बड़े से तख्ते पर सिक्खों के चर्खियों पर चढ़ने, आरों पर चीरे जाने, टोकों से बंद-बंद काटे जाने और भट्टियों में जाकर भस्मीभूत हो जाने की चित्र-कथा चित्रित थी।

सतभराई सोचती कि काश फूट के उपरान्त सिक्ख और मुसलमान दोबारा घुल-मिल जाते। उसे अपनी आँखों के सामने भविष्य का उभरता हुआ सूर्य, आलोक का फूटता हुआ स्रोत और लहलहाते हुए खेतों का चित्र दिखाई दिया!

लाहौर में फिसाद के अत्यन्त भयानक समाचार सुनकर सारा दिन गुरु-द्वारे के द्वार बन्द रहते और नंगी तलवारें लिये हुए पहरेदार पहरा देते रहते।

कभी सूचना आती कि अमुक बाजार में एक हिन्दू तड़प रहा है, कभी सूचना आती कि अमुक नुक्कड़ पर कोई कत्ल हुआ पड़ा है। डब्बी बाजार में लगातार चार घण्टों तक मुसलमान और सिक्ख, तलवारों से, बन्दूकों से लड़ते रहे; दोनों ओर मुर्दों के ढेर लग गए, तब जाकर पुलिस वहाँ पहुँची।

हिन्दू अखबारों में कहा जाता कि हिन्दू और सिक्ख अधिक मर रहे थे। मुसलमान अखबारों में कहा जाता कि उनका अधिक जानी नुकसान हो रहा था—और दोनों पक्षों के गुण्डे बराबर उतरने का प्रयत्न करते और ऐसे ढंग सोचते। मुसलमान-आबादी में यदि पाँच सिक्खों का वध किया जाता, तो सिक्ख-आबादी में दस मुसलमानों को समाप्त करने का प्रयत्न किया जाता।

गुरुद्वारे का सबसे बड़ा ग्रन्थी बार-बार दुःख से हाथ मलता और कहता कि—लाहौर में यह बीमारी अमृतसर से आई थी। अमृतसर में कितने समय से छुरेबाजी हो रही थी, लाहौर वाले शान्त रहे, किन्तु अमृतसर के गुण्डों ने लाहौर के गुण्डों को चूड़ियाँ भिजवाईं; और जिस दिन से वे चूड़ियाँ आईं थीं यहाँ भी आग लग गई थी। गुजरात वाली गाड़ी का तो यूँ ही बहाना था।

शाम को एक दिन सतभराई गुरुद्वारे की छत पर खड़ी सामने की सड़क पर बच्चों को खेलते देख रही थी। कुछ समय बाद एक सिक्ख डाकिया डाक लिए तेज़-तेज़ क़दम उठाता हुआ आया। खेलते-खेलते बच्चे रुक गए और एक-दूसरे की ओर आँखों-ही-आँखों में संकेत करने लगे, फिर नेफ़ों में से उन्होंने चाक़ू निकाल लिए और सिक्ख डाकिये पर टूट पड़े। पलक झपकते में डाकिया जैसे रुधिर के जौहड़ में पड़ा हुआ था, सामने दुकानदार कौतुक देख रहा था, बच्चे खून से लिथड़े हुए चाक़ू पकड़े भाग गए।

"जैसे किसी ने च्यूँटी को मार दिया हो!" सतभराई ने नीचे आकर सोहणेशाह को सारी बात सुनाई और बार-बार कहती—"जैसे किसी ने च्यूँटी को मसल दिया हो!"

पहले कुछ दिन यूँ ही छुरे-बाजी होती रही, अखबार वालों ने कुछ अधिक संख्या प्रकाशित की, किन्तु पुलिस वाले कुछ और ही कहते, बाहर लोगों की जिह्वा पर कुछ और ही था, और सचाई कुछ और ही थी।

और फिर आग लगनी आरम्भ हुई। शहर के बाहर की झोंपड़ियों से चलती-चलती यह आग शहर के गली-कूचों में आ गई, लोग दिन को छतों पर चढ़-चढ़कर देखते। रात को बच्चों के चीत्कार, गोलियों की तिड़-तिड़, बमों के धमाके, आकाश से बातें करती हुई लपटें किसी को सोने न देतीं। मोहल्लों के मोहल्ले जलने लगे, दुकानों की पंक्तियाँ जलकर भस्म हो गईं, चारों ओर आग बुझाने वाली लारियाँ दौड़ती रहतीं, घण्टियाँ बजती रहतीं। पुलिस की सीटियों और घण्टियों का शोर, बमों के धमाके, मोटरों की सरसराहट और उन सबसे ऊँचे 'पाकिस्तान ज़िन्दाबाद' के नारे, 'सत-श्री अकाल' के नारे दिल दहला देते।

एक दिन यह समाचार आया कि साथ की आबादी 'मिसरीशाह' से शहीदगंज पर आक्रमण होगा। जितना लोग बाहर कम निकलते उतनी अफ़वाहें अधिक फैलतीं। 'शहीदगंज' वालों ने टैलीफ़ोन करके पुलिस मँगवा ली, फिर किसी ने उनके कानों में फूँका कि शेष सभी स्थानों पर पुलिस से मिलकर ही तबाही फैलाई गई है। जब फ़िसादी आते तो पुलिस

वाले उनके साथ मिलकर गोली चलाते, किन्तु मुसलमान-पुलिस अब तो आ चुकी थी। 'शहीदगंज' के चारों ओर संगीनें चमकती रहतीं, बन्दूकें ताने हुए पुलिस के सिपाही चारों ओर मण्डला रहे थे, और भीतर गुरुद्वारे के लोगों तथा यात्रियों को ऐसे अनुभव होने लगा कि ज्यूँ ही अंधेरा होगा, उन बन्दूकों की नालियाँ उनकी ओर ही कर दी जायँगी।

सन्ध्या के अंधकार से पूर्व, सवेरे की रोशनी फैलने तक कर्फ्यू लगा रहता। कभी-कभी इसी इलाके में दिन को भी कर्फ्यू लगा दिया जाता। जब से पुलिस को यह सूचना मिली थी कि मिसरीशाह और शहीदगंज वाले लड़ने की तैयारियाँ कर रहे थे, तीन दिन का कर्फ्यू लगा दिया गया था। लोग न बाहर सब्जी लेने के लिए जाते और न बाहर पानी भरने के लिए जाते, जिन लोगों के घरों में राशन समाप्त था, समाप्त ही रहा। बच्चों के लिए दूध न आ सका, डाकिये पत्र न पहुँचा सके। पाठशालाएँ बन्द थीं, विद्यालय बन्द थे, बाजार बन्द थे। रेडियो-स्टेशन वाले या रिकॉर्ड बजाते रहते या नेताओं से शान्ति की अपील करवाते रहते, अथवा यह बताते रहते कि कहाँ फ़िसाद हुआ था, कितने हिन्दू, कितने सिक्ख और कितने मुसलमान मारे गए थे।

सड़कें सुनसान थीं, वीरान पड़ीं थीं। कहीं-कहीं पुलिस की या मिलिट्री की लारी तेजी से गुजर जाती; कभी-कभी नुक्कड़ पर लारी जा खड़ी होती, और पुल के नीचे या नाली में सड़ती हुई लाश को उठाकर ले जाती।

फिर मुसलमान आबादी में जीपों पर जाकर हिन्दुओं और सिक्खों ने आक्रमण कर दिया। मुसलमान अफ़सरों ने क्रोधित होकर हिन्दुओं के एक बाजार पर कर्फ्यू लगाकर और पुलिस बिठाकर गुण्डों को लूट की खुली छुट्टी दे दी और आग लगवा दी। सारी रात यह बाजार लूटा जाता रहा, जलता रहा। दुकानों और दुकानों के ऊपर मकानों में फँसे हुए दुकानदार चिल्लाते रहे, किन्तु किसी ने उनकी फ़रियाद न सुनी, कोई भी सहायता के लिए न पहुँचा। सामने पुलिस खड़ी थी। जो कोई दौड़ने का प्रयास करता तो उसे गोली का लक्ष्य बना दिया जाता। बताने वालों ने

बताया कि इलाके के मैजिस्ट्रेट ने यह सब कुछ स्वयं वहाँ खड़े होकर करवाया।

और मैजिस्ट्रेट रात-दिन दाँत पीसता रहा, अपने भीतर का विष घोलता रहा, उसके इकलौते नौजवान लड़के पर हिन्दू-सिक्ख फ़िसादियों ने आक्रमण किया था। जब वह उसे हस्पताल में देखने के लिए जाता, तो मार्ग में हिन्दुओं और सिक्खों की कुछ-न-कुछ हानि करवा जाता। जब वापिस आता तो आँख के इशारे से आग लगवा जाता। न जाने कितने 'काफ़िरों' को उसने अपने पिस्तौल से ढेर कर दिया था। न जाने कितने ही मकानों को उसके इशारे पर जला दिया गया था।

मुसलमान गुण्डे बंगले-बंगले घूमते, पैट्रोल इकट्ठा करते। जो लोग पैट्रोल न दे सकते, वे पैट्रोल खरीदने के लिए पैसे देते। एक कोठी में ताँगे-वाले ने सवारियाँ उतारीं, सामने गिराज में खड़ी उसे मोटर दिखाई दी—झट ताँगे में से वह पैट्रोल का डिब्बा उठा लाया और मोटर की ओर इशारा करके डिब्बा भरने के लिए उसने कहा—सिविल लाइन में रहने वाले उस मुसलमान घराने को उसकी यह बात अजीब लगी, उन्हें तो फ़िसादों से घृणा थी। उन्होंने हिन्दू और मुसलमान में कोई भेद नहीं रक्खा था। मुसलमानों से अधिक उनकी दोस्ती हिन्दू और सिक्खों से थी। और ताँगे वाले को शायद पता नहीं था कि अब भी उनकी बैठक में एक सिक्ख-मित्र और उसकी पत्नी बैठे हुए थे और बातें कर रहे थे। ताँगे वाले ने जब घर वालों का व्यवहार देखा तो उसने ज़ोर-ज़ोर से बोलना आरम्भ कर दिया—"हम लोग तुम्हारे लिए जान की बाजी लगा रहे हैं, हम लोग तुम्हारे लिए पाकिस्तान बना रहे हैं, हम लोग जागकर रातें काटते हैं ताकि तुम दिन को कोठियों में रह सको, लेकिन तुम इतनी-सी भी कुर्बानी नहीं कर सकते!"

बाहर शोर सुनकर भीतर बैठा हुआ सिक्ख-अतिथि खिड़की में से झाँकने लगा और ताँगेवाला शर्मिन्दा होकर चला गया।

हिन्दू और सिक्ख लड़के कॉलिज की विज्ञानशालाओं से तेजाब और न

जाने क्या-क्या कुछ ले आते और बम बनाते रहते। कई प्रकार के बम बनाने उन्होंने सीख लिये थे, भिन्न-भिन्न प्रकार के बम बनाते। वे सोचते थे कि मुसलमानों में इतनी बुद्धि नहीं थी कि वे ऐसी वस्तुएँ तैयार कर सकें, बड़े-बड़े सेठों ने उन्हें हज़ारों रुपये दे रक्खे थे।

सिक्ख-घरानों में अखण्ड पाठ हो रहा था, गुरुद्वारों में इन पाठों का एक ताँता बँध गया था, और सिक्ख नौजवान तलवारें चमकाए रहते, कृपाणें तेज करते रहते, बन्दूकों के कारतूस इकट्ठे करते रहते, बहुतों ने गुप्त रूप से कई पिस्तौल मँगवा लिये थे, अनुचित-राइफ़लें मँगवा ली थीं।

तीन दिन के बाद जब कर्फ्यू उठाया गया, तो सोहणेशाह सतभराई को छिपाए हुए लायलपुर की गाड़ी में जा बैठा। अखबार पढ़ने वाले बताते थे कि उस ओर शान्ति थी।

२८

जब वे गाड़ी से लायलपुर के स्टेशन पर उतरे तो सामने कुलदीप खड़ा था। सतभराई घबरा ही रही थी कि सोहणेशाह ने आगे बढ़कर कुलदीप को गले से लगा लिया—

"बेटा तुम कहाँ ?"

× × × ×

और फिर सतभराई को, कुलदीप को, और सोहणेशाह को ऐसे अनुभव हुआ जैसे सारी दुनिया फूल के समान हल्की हो गई हो। चारों ओर जैसे धीमी-धीमी, हल्की-हल्की पवन चल रही हो, जैसे पहाड़ी-प्रदेश से उतरकर दरिया शान्तिपूर्वक और फैलकर बहने लगता है।

बाहर एक मुसलमान ताँगे वाले ने बन्दगी कहकर उनका सामान पकड़ लिया—

सोहणेशाह और सतभराई हैरान हो रहे थे कि यह कैसा देश है जहाँ हाथ-भर की दूरी पर हिन्दू और मुसलमान हँस रहे थे, खेल रहे थे।

मुसलमान मजदूर हिन्दुओं को लाख-लाख सलाम कर रहे थे और उधर लाहौर में एक-दूसरे का नाम नहीं सुन सकते थे।

बाजार में हिन्दू और सिक्ख, मुसलमानों की दुकानों से सब्जी खरीद रहे थे, मिर्च-मसाले की दुकानें भी मुसलमानों की थीं। चारों ओर लेन-देन और चहल-पहल वैसी-की-वैसी दिखाई दे रही थी। मार्ग में एक गुरुद्वारा आया, अकेली स्त्रियाँ और बच्चे गुरुद्वारे में आ-जा रहे थे। गुरुद्वारे में से कीर्तन की आवाज़ लाउडस्पीकर द्वारा बाहर सड़क पर भी सुनाई दे रही थी। सोहणेशाह को मुसलमान ताँगे वाले ने गुरुद्वारे के सामने से गुज़रते हुए क्षण-भर के लिये सिर झुका लिया, आँखें बन्द कर लीं।

कुलदीप के चचेरे भाई का मुसलमान-आबादी में अकेला घर था।

वे अभी ताँगे से उतर ही रहे थे कि पड़ोस के मुसलमान बालक नए आए हुए मेहमानों को पास हो-होकर देखने लगे। कोई पाँच मिनट नहीं बीते होंगे कि पड़ोस की स्त्रियाँ सतभराई से मिलने के लिये आ गईं; किन्तु स्त्रियाँ जब मिलकर बैठती हैं तो बच्चों के कपड़ों से लेकर संसार का कौन-सा ऐसा विषय है जिस पर वे वार्तालाप नहीं करतीं। और जब फ़िसादों की चर्चा छिड़ी तो सतभराई को उस पर विश्वास न आया जो कुछ कि वह सुन रही थी।

"खुदा उन्हें ग़ारत करे! इन गोरों ने हमें कहीं का नहीं छोड़ा!"

"यह सब-कुछ अँग्रेज का किया धरा है, यही हमको लड़ा रहे हैं।"

"यह किसी ने नहीं सुना होगा कि भाई-भाइयों से लड़ पड़ते हैं, नाखून से गोश्त अलग होता किसने देखा है?"

"पड़ोसी तो माँजाये होते हैं! हमारे सम्बन्ध, हमारा रहन-सहन, हमारा लेन-देन—हमें कौन अलग कर सकता है?"

"कहते हैं कि पाकिस्तान बनाना है—बनता है तो बड़े लोगों के लिये बन जाए, हमें पाकिस्तान से क्या मतलब?"

"पाकिस्तान हो चाहे हिन्दुस्तान हो, हमें क्या मिल जाना है? हमारे मर्दों ने तो दफ्तरों में जाना है, लिख-पढ़कर रोटी कमानी है!"

"और मैं जमींदारों से कहती हूँ कि क्या पाकिस्तान की धरती से ज़्यादा अनाज उगा करेगा ?"

"अल्ला, हमारे शहर वालों को अक्ल दे !"

"हमारा डिप्टी-कमिश्नर तो हीरा है, फरिश्ता है।"

"हाँ री ! कल मेरा मर्द कह रहा था कि आग़ा साहब ने सब फ़िसादियों को बुलाकर कह दिया है कि चाहे हिन्दू हो, चाहे मुसलमान, चाहे सिक्ख, शरारत करने वाले को गोली से उड़ा दिया जाएगा।"

सतभराई अनुभव करती, जैसे वह स्वप्न देख रही हो, युगों बाद उसके अधरों पर मुस्कान खेलने लगी, बात-बात पर उसके सिर पर से दुपट्टा ढुलक जाता।

सामने दालान में कुलदीप पीठ किये हुए बैठा था, सोहणेशाह बैठा हुआ था, कुलदीप का चचेरा भाई बैठा हुआ था। तीनों परस्पर बातें कर रहे थे।

सतभराई सोचती—सोहणेशाह से कहकर वह उसी मोहल्ले में कहीं घर खरीद लेंगे, शहर से बाहर ज़मीन मोल ले लेंगे—लायलपुर में जहाँ कुलदीप होगा, जहाँ हिन्दुओं को यह मालूम नहीं था कि वे हिन्दू थे, जहाँ सिक्खों को यह ज्ञात नहीं था कि वे सिक्ख थे, जहाँ मुसलमानों को यह मालूम नहीं था कि वे मुसलमान थे, अथवा दूसरों से अलग कोई और धर्म के थे। सतभराई सोचती कि वह उसी मोहल्ले में रहेगी। जहाँ मुसलमान स्त्रियाँ सिक्ख-पड़ोसियों के घरों में आकर हँस सकतीं थीं, बैठ सकतीं थीं। जहाँ के सिक्ख, मुसलमान-पड़ोसिनों को 'बहन' कहकर बुलाते थे, 'मौसियाँ' कहकर पुकारते थे।

सतभराई ने देखा—कुलदीप के चचेरे भाई के घर वाले अपने मुसलमान-पड़ोसियों से एक-जान थे। दिन को गर्मी थी, पड़ोसियों के घर से बिजली का फ़ालतू पंखा आ गया। एक चारपाई की आवश्यकता थी, वह सामने के घर वाले दे गए। यहाँ से वहाँ से छाछ आ गई, अख़बार पढ़ने के लिये मँगवाया गया।

यह सब कुछ देख-देखकर सतभराई को अपना गाँव याद आता, राज-कर्णी याद आती, अपना अब्बा याद आता, वे खेल याद आते, वे गीत याद आते, वह स्नेह याद आता, वे दालान याद आते, वह छाँव याद आती, झूले याद आते, सावन की झड़ियाँ याद आतीं; और उसका जी चाहता कि उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगें और वह जी भरकर रो ले। वह आँसुओं से छलकतीं अपनी आँखों को ओट में जाकर पोंछने लगती, बार-बार हँसती और अपने-आपको भुला देने का प्रयत्न करती।

सोहणेशाह, कुलदीप और उसका चचेरा भाई शाम को ताँगा लेकर बाहर ज़मीन देखने के लिये गए। सोहणेशाह फलों से लदे हुए बागीचों और सब्जियों से भरी हुई नहरी-धरती को देख-देखकर अवाक् रह गया। कई स्थानों पर बिकाऊ धरती के विज्ञापन पढ़कर सोहणेशाह का जी चाहता —काश! धरती कभी गुड़-चीनी के समान बिकी होती। वह रात से पहले ही उसे अपने सारे सरमाये से खरीदकर दोबारा वैसा-का-वैसा हो जाता, जैसा कि वह अपने पहले गाँव में था।

लोगों ने सोहणेशाह को समझाया—बाहर गाँव में ज़मीन बहुत ही सस्ती थी, वह सन्तोष से काम ले और तनिक ठहरकर सोच-समझकर अपना पैसा लगाए। किन्तु सोहणेशाह को लायलपुर की धरती देखकर रात को नींद न आई।

लोगों ने सोहणेशाह को समझाया—देश में काफ़ी गड़बड़ थी और किसी को कुछ मालूम नहीं था कि क्या होने वाला था, इसलिये उसे सोच-समझकर पैसा फेंकना चाहिए, किन्तु सोहणेशाह के दिल को कोई बात न भाती। दलाल आकर उसे और ही पट्टी पढ़ाते, हिन्दुस्तान यदि स्वतन्त्र भी हो गया, यदि पाकिस्तान बन भी गया तो लायलपुर का इलाक़ा जिसे सिक्खों ने परिश्रम से आबाद किया था, किस प्रकार मुसलमानों को दे दिया जाएगा। कई बड़े-बड़े आदमी उजड़कर लायलपुर में आकर आबाद हो चुके थे।

सोहणेशाह सोचता कि एक बार लायलपुर की ज़मीन खरीदकर, एक

बार उस पर खड़े होकर चाहे फिर उसकी आँखें बन्द हो जाएँ···और वह एक नशे में, एक मस्ती में सारा दिन इधर-से-उधर और उधर-से-इधर घूमता रहता !

लायलपुर के खेतों को देखकर सोहणेशाह अपने सब दुःख भूल गया। उसका दिल कहता कि इस बर्बादी में भी कोई भेद था, कोई भेद था—आखिर इसका कुछ तो परिणाम निकला। वह बार-बार अपने-आपको समझाता और बार-बार आकाश की ओर देखकर मुस्करा उठता। उसके पास इतना रुपया पड़ा था, वह उसे सँभाल-सँभालकर थक गया था। वह सोचता—सारी-की-सारी धरती वह सतभराई के नाम कर देगा—और फिर सतभराई के हाथ पीले कर देगा। सोहणेशाह के दिल में जब कभी यह विचार आता तो उसके हृदय में विकलता-सी जाग उठती।

और उधर सतभराई तथा कुलदीप एक-दूसरे के समीप बैठकर दिल की बात इक-दूजे से कह रहे थे।

कुलदीप कहता कि वह पटियाले जाता हुआ लाहौर के स्टेशन पर गाड़ी से रह गया, फिर उसका चचेरा भाई उसे मिल गया। फिर उसने अखबार में सतभराई और सोहणेशाह की तस्वीर देखी, लायलपुर आकर वह सदा ही गाड़ी देखने के लिये आता और प्रतिदिन निराश होकर लौट जाता। किन्तु उसे विश्वास था कि आने वाले अवश्य आएँगे, और आखिर वे आ ही गए।

कुलदीप सोचता—जिस दिन सतभराई उसकी हो गई, तो वह अपने दुःखों को कभी याद नहीं करेगा।

बैठे-बैठे कुलदीप कभी यूँ ही उदास हो जाता, उसने तो शरणार्थियों की गाड़ी को पटियाले पहुँचाना था, उसने लोगों को अपने-अपने ठिकानों पर भिजवाना था, और यहाँ वह अपने दिल से विवश कुछ और ही देख रहा था। ऐसे दिन वह चुपचाप पड़ा रहता, बात-बात पर उसकी आँखें सजल हो जातीं।

बिल्कुल इसी प्रकार की एक उलझन सोहणेशाह के हृदय में कभी-

कभी सिर उभारती कि सतभराई उसके मित्र की धरोहर है और वह इस प्रकार के विचारों में डूबा हुआ कभी-कभी कुलदीप से डरने लगता। कभी-कभी कुलदीप की आँख-से-आँख न मिलाता, कभी-कभी दिन भर में एक बार भी उससे बात न करता, उसे मिलने से कतराता।

सतभराई सयानी हो गई, वह स्त्री थी। वह कुलदीप की कठिनाइयाँ भी समझती थी और सोहणेशाह की उलझनों को भी पहचानती थी। इस आयु में उसके लिये इन सब बातों का ज्ञान एक विपत्ति थी।

कुलदीप साँझ-सवेरे पाठ करता। ज्यों-ज्यों वह किसी मुसीबत में पड़ता-त्यों-त्यों अपना अधिक समय गुरुद्वारे में गुजारता। प्रातःकाल जब सब लोग सोए पड़े होते, कुलदीप चुपचाप निकल जाता और शाम को फिर पाठ सुनने के लिये चला जाता।

कुलदीप जितना अधिक सहारा पूजा-पाठ में ढूँढता, उतना ही सतभराई को उससे भय लगने लगता।

"यदि कुलदीप को पता चल गया कि सतभराई का अब्बा कौन है!"

"यदि मोहल्ले वालों को बता दिया जाए कि सतभराई सोहणेशाह की लड़की नहीं है!"

क्या वे पड़ोस वाले इतने विशाल हृदय के होंगे? क्या वे सिक्ख-धर्म की आस्थाओं से इतने ऊँचे हो चुके थे?

सतभराई का हृदय धड़कने लगता। सोहणेशाह को कभी-कभी यों अनुभव होता, जैसे वह दोबारा उसी प्रकार हो जाएगा।

ज्यों-ज्यों दिन गुजरते, त्यों-त्यों कुलदीप सतभराई के समीप आता जाता। हर बार जब सोहणेशाह, सतभराई को बेटा कहकर बुलाता, हर बार जब सतभराई सोहणेशाह को 'चचा' कहकर पुकारती उनके हृदय में एक धक्का लगता, उसके सीने में अन्धकार-सा भरने लग जाता।

कभी-कभी कुलदीप को ऐसे जान पड़ता—सतभराई उससे खिंची-खिंची-सी रहती है। कभी-कभी कुलदीप को ऐसे अनुभव होता—सोहणेशाह उससे खिंचा-खिंचा-सा रहता है। ऐसे समय में कुलदीप का दिल बार-बार पटियाले

दौड़ जाने को चाहता, पटियाले के शरणार्थियों में रहकर उनकी सेवा में,
वह सोचता--वह अपने-आपको भुला देगा।

किन्तु, सतभराई का प्यार कितना गहरा था!

२६

लोग सोहणेशाह को रोकते रहे, किन्तु उसने जमीन खरीद ली और मकान ले लिया। कुलवन्त (कुलदीप का चचेरा भाई) विस्मित होता कि बूढ़े को धरती से कितना मोह था!

जमीन लेकर सोहणेशाह सारा दिन बाग़ में व्यतीत कर देता। बूढ़े का परिश्रम, बूढ़े का साहस और बूढ़े की दृढ़ता देख-देखकर पड़ोसी हैरान थे।

पीछे सतभराई घर की देखभाल में लगी रहती। उसका कुछ समय कुलदीप की प्रतीक्षा में कट जाता, कुछ समय उसके साथ बैठकर बातों में बीत जाता और कुछ समय उसकी याद में व्यतीत हो जाता।

फिर कुलवन्त से सतभराई ने पढ़ना आरम्भ कर दिया। सायंकाल जब सोहणेशाह घर लौटता और सतभराई को पुस्तक पकड़े देखता—तो उसका दिल खिल उठता।

पढ़ाते-पढ़ाते कुलवन्त सतभराई को हैरान करने वाली नई-नई बातें बताता—किसानों के अधिकार क्या थे, मजदूरों पर क्या-क्या ज्यादतियाँ की

जाती हैं, किसानों को क्या करना चाहिए···धर्म के बन्धन और नये समाज की कीमतें !

सतभराई कुलवन्त के पढ़ाए हुए पाठ द्वारा सोहणेशाह को नित-नई बातें बताती, कितनी देर तक उससे विवाद करती रहती। जब कुलदीप आता तो उसके पूजा-पाठ की हँसी उड़ाती।

सोहणेशाह सतभराई के बढ़ते हुए ज्ञान और चंचलता पर प्रसन्न भी होता, आश्चर्य भी करता। कुलदीप को कभी-कभी उससे भय लगने लगता।

कुलवन्त सतभराई को धर्म के नाम पर किये गए अत्याचारों की बार-बार याद दिलाता। कुलवन्त इस बात पर भी हँसता रहता कि धर्म के कारण हिन्दुस्तान को बाँटा जा रहा है—एक भाग हिन्दुओं को मिल जायगा और एक भाग मुसलमानों को दिया जायगा। एक भाग का नाम हिन्दुस्तान होगा और दूसरे का पाकिस्तान ! मस्जिदें बाँटी जाएँगी, मन्दिर बाँटे जाएँगे, बुरके बाँटे जाएँगे, लहँगे बाँटे जायँगे, नत्थें बाँटी जाएँगी, बिंदियाँ बाँटी जाएँगी !

और यह 'बन्दरबाँट' कुलवन्त उसे बताता कि कुछ दिनों तक ही होने वाली थी। कुलदीप कहता कि धर्म में कोई बुराई नहीं थी, बुराई धर्म के अनुचित प्रयोग में है। ईश्वर को एक मान लेना और एक ईश्वर से भय खाते रहना, अपने पड़ोसियों से प्रेम करना और भाईचारा रखना, सत्य बोलना, यह सब-कुछ धर्म की शिक्षा है। और इनमें से कोई बात भी तो बुरी नहीं थी।

और जब सतभराई कुलदीप की बातें सुनती, उसे ऐसे अनुभव होता—जैसे जो कुछ वह कह रहा है बिल्कुल गलत नहीं था।

एक दिन सतभराई ने कोठे पर खड़े पड़ोसियों के घर में देखा कि चटाई बिछाए एक वृद्ध नमाज पढ़ रहे थे। कितने समय तक वह वहाँ स्थिर खड़ी देखती रही।

उस दिन दोपहर को कुलवन्त से पाठ उससे न पढ़ा गया। बात-बात

पर उसकी आँखों में आँसू भर आते—सायंकाल कुलदीप से वह छोटी-छोटी बातें पूछती रही, उसके पाठ के बारे में, उसके गुरुद्वारा जाने इत्यादि के सम्बन्ध में।

सतभराई को ऐसे अनुभव होता जैसे वह एक कोमल पत्ती हो—जिधर से हवा आती है उधर ही को उड़कर चली जाती है! और उसे अपने-आप पर दया आने लगी।

और फिर एक दिन तो अखबारों में यह समाचार प्रकाशित हुआ कि अंग्रेज़ ने हिन्दुस्तान छोड़ जाने का निर्णय कर लिया था, हिन्दुस्तान को दो भागों में बाँट दिया जायगा और लायलपुर पाकिस्तान में आ जायगा।

सोहणेशाह की सम्पत्ति का मूल्य दो कौड़ी रह गया। समझदार हिन्दुओं और सिक्खों ने अपना कारोबार समेटना आरम्भ कर दिया। अपनी सम्पत्ति के ग्राहक ढूँढ़ने आरम्भ कर दिये।

सोहणेशाह कड़े साहस का प्रदर्शन करता, कहता कि पाकिस्तान में क्या बुराई है। लेकिन फिर उसका दिल डाँवाडोल हो जाता।

फिर सुनने में आया कि अपील की जा रही है। हिन्दुओं और सिक्खों के अधिकारों का अवश्य ध्यान रक्खा जायगा, लाहौर भी हिन्दुओं और सिक्खों को मिल जायगा। लायलपुर, मुरब्बों का इलाका भी हिन्दुओं और सिक्खों को मिलेगा, और 'ननकाणा साहब' भी हिन्दुस्तान में आएगा।

अखबारों में नित-नई खबरें छपतीं। लायलपुर का ईमानदार डिप्टी-कमिश्नर नित-नये ढंग हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने के सोचता रहता, मुहल्ले में 'शान्ति-सभाएँ' बनाई गईं, कहीं तनिक-सी शरारत होती तो पल-भर में उसे वहीं-का-वहीं दबा दिया जाता। साम्प्रदायिक-नीति वाले अखबारों का नगर में प्रवेश रोक दिया गया। हर गुण्डे पर ध्यान रक्खा जाने लगा। बहुत से बदमाशों को बन्दी बनाकर नज़रबन्द कर दिया गया।

फिर भी प्रत्येक अखबार में इतने भड़काने वाले वक्तव्य छपते, इतना फैलने वाला विष होता कि पाठकों का रक्त खौलने लगता, चाहे वह हिन्दू हो, सिक्ख या मुसलमान। युवक डिप्टी-कमिश्नर ने पक्का निश्चय किया

हुआ था कि अपने शहर में खून की एक बूँद नहीं गिरने देगा।

जुलाई का महीना, कुछ वर्षा, कुछ कोलाहल और कुछ आतंक में बीत गया।

अगस्त का महीना आरम्भ हुआ। पन्द्रह अगस्त को देश-विभाजन होना था, हिन्दुस्तान और पाकिस्तान की नई रियासतें स्थापित की जानी थीं जिन पर अंग्रेज़ का बिल्कुल अधिकार नहीं होगा।

अगस्त के पहले पाँच दिन तो शान्ति से गुज़र गए। दफ्तर के हिन्दू-सिक्ख तबदील होकर हिन्दुस्तान जा रहे थे और उधर से मुसलमान इधर पाकिस्तान आ रहे थे।

पंजाब के सिपाहियों और अफसरों का भी तबादला हो रहा था।

अगस्त की छः तारीख को दिन के समय भी सारी सड़कें सूनी-सूनी-सी थीं। दालानों में वीरानी थी—रात को रेडियो पर बताया गया और फिर प्रातःकाल लोगों ने समाचार-पत्रों में पढ़ा कि सारे पंजाब में फिसादी-आग भड़क उठी थी। लाहौर में खून के दरिया बह रहे थे, अमृतसर में लाशों के अम्बार लगे हुए थे।

लायलपुर का देवतास्वरूप डिप्टी-कमिश्नर सवेरे से सड़कों पर घूम रहा था। स्थान-स्थान पर सिपाहियों का पहरा लगा रहा था, उचित आदेश दे रहा था।

लायलपुर तो बचा रहा, किन्तु उसके कस्बों में गड़बड़ आरम्भ हो गई। आरम्भ में तो इक्के-दुक्के आक्रमण होते रहे, किन्तु कुछ दिनों में गाँव दूसरे गाँवों पर टूट पड़े। मारधाड़ और लूट-खसूट आरम्भ हो गई।

पाँच अगस्त के बाद सोहणेशाह को उसके खेतों पर न जाने दिया गया। पाँच अगस्त के बाद कुलवन्त कुछ ऐसा अपने काम में उलझा कि उसने कभी इधर मुँह न किया। पाँच अगस्त के बाद दिन-भर गुरुद्वारे में बैठा हुआ कुलदीप न जाने क्या-क्या सोचता रहता।

लाहौर और अमृतसर से तो बहुत ही भयानक समाचार आ रहे थे। मोहल्लों-के-मोहल्ले जलाए जा रहे थे, परिवारों-के-परिवार मारे और काटे

आ रहे थे; और लायलपुर के लोग जो जाना भी चाहते, अब किसी मार्ग से नहीं निकल सकते थे।

फिर गाँवों-के-गाँव उजड़कर शहरों में आ गए। ग्रामीणों ने आकर अपनी आपबीती गुरुद्वारों और मन्दिरों में सुनाई, सारे शहर में कुहराम मच गया, चोरी-छिपे तलवारें तेज़ की जाने लगीं, छुरे चमकाए जाने लगे। बमों का मसाला एकत्रित किया जाने लगा, बन्दूकें और पिस्तौलें साफ की जाने लगीं।

और लायलपुर के डिप्टी-कमिश्नर को भय था कि कहीं बीच-बचाव ही में वे आपस में न उलझ पड़ें।

लायलपुर के खालसा-कॉलिज में एक शरणार्थी-कैम्प खोल दिया गया, जहाँ इलाके-भर के लोग आकर अपना सिर छिपाते।

शहर के बड़े-बड़े रईसों ने हवाई जहाजों में बैठकर बच निकलना आरम्भ कर दिया। पाठशालाएँ बन्द हो गईं, विद्यालय बन्द हो गए, लोग रातों को जागते। मुसलमान-आबादी को हिन्दू और सिक्खों से भय था, और हिन्दू-सिक्ख-आबादी मुसलमानों से भय खाती थी।

और फिर समाचार आने लगे उन मुसलमान सम्बन्धियों के जिन्हें पूर्वी-पंजाब में लूटा गया। जिनके घरों को, जिनकी सम्पत्ति को जलाया गया; जिनकी पत्नियों, बहनों और बेटियों का सतीत्व भंग किया गया. जिनके बच्चों को तला गया, काटा गया, नोचा गया।

फिर समाचार आए, मस्जिदों को भ्रष्ट किया जा रहा था, खानकाहों और समाधियों को तोड़ा-फोड़ा जा रहा था; सैयद, पीर और मौलवी शहीद हो रहे थे।

फिर समाचार आए—कैसे मुसलमान गाड़ियों में लदे हुए पाकिस्तान आने लगे थे, कैसे गाड़ियों पर सिक्खों के जत्थे टूट पड़ते थे और च्यूँटियों के समान निराश्रित लोगों को काट डालते थे।

और सतभराई अकेली दिन-भर अपने घर में पड़ी रहती। सोहणेशाह दिन-भर, रात-भर, दालान में बैठा हुआ, बरामदे में बैठा हुआ समय काट

देता। ज्यों-ज्यों बुरे समाचार आते, त्यों-त्यों मुसलमान-पड़ोसी सोहणेशाह और कुलवन्त के घर कम आने लगे और फिर उन्होंने आना-जाना बिल्कुल बन्द कर दिया।

पुलिस का चारों ओर कड़ा पहरा था। डिप्टी-कमिश्नर अपने ईमान पर अभी तक दृढ़ था कि वह अपने शहर में कोई दुर्घटना नहीं होने देगा। रात-दिन वह मोटर लिए चक्कर काटता रहता।

जहाँ हिन्दू-सिक्ख 'आगा साहब-आगा साहब' करते हुए न थकते, जहाँ हिन्दू-सिक्ख 'आगा साहब' का नाम लेकर मार्ग पर चलते, वहाँ मुसलमानों ने परस्पर खुसर-फुसर आरम्भ कर दी।

फिर समाचार आए—मुसलमान-पड़ोसियों ने आगा साहब पर आक्रमण करने की योजना बनाई, और उनमें से एक आगा साहब के बंगले में छिपा हुआ पकड़ा गया।

और फिर मुस्लिम-लीग का एक बड़ा नेता आया, उसके सम्मान में एक जलसा किया गया। जलसे में उस प्रसिद्ध नेता ने यह कहा कि पाकिस्तान में कम संख्या वाली जातियों की पूरी-पूरी रक्षा की जायगी। इस्लाम हमें भ्रातृत्व और पड़ोसियों से प्यार सिखाता है। किन्तु जब वह व्यक्तिगत रूप से स्थानीय-नेताओं से मिला तो उनके कान में विष फूँक गया।

लायलपुर के मुसलमान-नेता डिप्टी-कमिश्नर से प्रसन्न नहीं थे, यह बात भी प्रान्त के बड़े नेता को नोट करवा दी गई।

जिस रात जलसा हुआ, उससे अगले दिन शहर की नालियों में हिन्दुओं और सिक्खों की छः लाशें मिलीं। डिप्टी-कमिश्नर ने आदेश दिया कि कोई गुण्डा यदि शरारत करता हुआ पकड़ा जाए तो उसे उसी समय गोली से उड़ा दिया जाए। पाकिस्तान बनने से दो दिन पूर्व आगा साहब की पुलिस ने इस प्रकार के दस गुण्डे गोली का निशाना बना दिये थे।

३०

चौदह अगस्त की सवेरे पाकिस्तान बन चुका था।

हर घर के ऊपर चाँद-तारे वाले हरे झण्डे लहरा रहे थे। हिन्दू, सिक्ख और मुसलमान गले लगकर 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगा रहे थे; शहनाइयाँ बज रही थीं, बच्चों में मिठाई बाँटी जा रही थी, जलसे हो रहे थे। पाकिस्तान पर मर-मिटने की प्रतिज्ञाएँ ली जा रही थीं, सड़कें बिल्कुल साफ़ थीं, हर स्थान पर पानी का छिड़काव किया गया था। गली-गली में, हर दुकान पर रेडियो हर्ष के गीत गा रहे थे, पाकिस्तान के नेताओं के सन्देश पेश कर रहे थे। मस्जिदों में शुक्राने की नमाजें पढ़ी जा रही थीं। हिन्दू-मुसलमान गले मिल-मिलकर एक-दूसरे से मुबारिकबाद कह रहे थे। मोहल्लों के बाहर लोगों ने हरी पत्तियों के दरवाजे बनाए, घरों के सामने रंग-बिरंगी झण्डियाँ लगाईं।

औरतें, बालक, मर्द, बूढ़े और युवक सज-धजकर, शहर के मैदान में होने वाले जलसे में गए जहाँ झण्डा लहराने की रस्म अदा की जाने वाली थी।

डिप्टी-कमिश्नर ने झण्डा लहराते हुए ईश्वर और लोगों का लाख-लाख धन्यवाद किया कि एक साधारण-सी दुर्घटना के अतिरिक्त लायलपुर में ऐसा कुछ नहीं हुआ था जिसके कारण उन्हें लज्जित होना पड़ता।

फिर हिन्दू-नेताओं ने वचन दिये कि वे पाकिस्तान के वफ़ादार-नागरिक बनकर रहेंगे। फिर सिक्ख-नेताओं ने वचन दिया कि वे पाकिस्तान को अपना घर समझकर रहेंगे। और मुसलमान-नेताओं ने काबे की ओर मुँह करके क़सम खाई कि वे अपने पड़ोसियों का यथासम्भव ध्यान रखेंगे।

जलसे के पश्चात् डिप्टी-कमिश्नर आग़ा साहब प्रसन्नचित्त घर पहुँचे ही थे कि लाहौर से टेलीफ़ोन आया कि आग़ा साहब को तबदील कर दिया गया। टेलीफ़ोन पर यह भी कहा गया कि वे तत्काल अपना काम किसी दूसरे को सौंपकर चौबीस घण्टों के भीतर लायलपुर से लाहौर पहुँच जाएँ।

अभी तो दोपहर के बाद उन्होंने हिन्दुओं और सिक्खों की ओर से किये जाने वाले जलसे का सभापतित्व सँभालना था, और रात को उन्होंने सिक्खों की ओर से दिये जाने वाली दावत में सम्मिलित होना था। शाम को उन्होंने सौ से अधिक प्रतिनिधियों को चाय पर बुलवाया हुआ था।

बात उड़ाने वालों ने आग के समान यह समाचार सारे शहर में फैला दिया कि आग़ा साहब को नौकरी से हटा दिया गया। पाकिस्तान बनने के बाद मंत्रियों ने सबसे पहले एक विद्रोही को दण्ड दिया, पाकिस्तान बनने से पहले दस गुण्डों पर गोली चलाने वाले बद-दिमाग़ डिप्टी-कमिश्नर को दण्ड—इस प्रकार की पंक्तियों से स्थानीय अख़बारों ने समाचार प्रकाशित किये।

गली-गली में गुण्डों ने "आग़ा साहब मुर्दाबाद" के नारे लगाने आरम्भ कर दिये, शराब पीकर बकवास करने लगे। लड़कियों के विद्यालय के होस्टल के बाहर एक सिक्ख-लड़की को छेड़ा गया। फिर मन्दिर से आती हुई एक हिन्दू-नारी का मान लूटा गया। मुसलमान मोहल्लों में 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के साथ-साथ 'हिन्दुस्तान मुर्दाबाद' के नारे लगने भी आरम्भ हो गए। एक-एक मुसलमान बच्चा हिन्दू-सिक्ख राहगीर को

मुँह चिढ़ाने लगा, देखते-ही-देखते कदम-कदम पर खड़ी पुलिस न जाने कहाँ गायब हो गई।

दोपहर के बाद हिन्दुओं की ओर से किये जाने वाले जलसे में 'आगा साहब' सोच में डूबे हुए चुपचाप आए। मंच पर चढ़ते ही सबसे पहले उन्होंने यह घोषणा की कि वे उस जलसे का सभापतित्व एक साधारण-व्यक्ति के समान कर रहे थे, डिप्टी-कमिश्नर की हैसियत से नहीं। इस पर हिन्दू-सिक्खों ने 'आगा साहब जिन्दाबाद' के नारे लगाने आरम्भ कर दिये। मुसलमान-फ़िसादी जो चारों ओर से आकर न जाने कब से वहाँ खड़े थे, यह सहन न कर सके। हिन्दू-सिक्खों के नारों के जवाब में उन्होंने 'आगा साहब' को लाख-लाख गालियाँ देनी आरम्भ कर दीं। जिन गुण्डों को गोली से उड़ाया गया था, उनके नाम ले-लेकर नारे लगाने आरम्भ कर दिये, उन्हें शहीद कहना आरम्भ कर दिया।

नारे ऊँचे उठते गए, जलसे में खलबली मच गई। जलसे के प्रबन्ध-कर्त्ता लोगों को बैठे रहने का अनुरोध करने लगे किन्तु आतंक इतना फैल चुका था, कोलाहल इतना बढ़ चुका था कि जलसे का जारी रहना कठिन हो गया। हिन्दू, जलसे के घेरे से निकलने का यथासम्भव प्रयत्न करने लगे; मुसलमान फ़िसादी जलसे के घेरे के भीतर भगदड़ मचाने लगे और इस खींचातानी में लोग हाथापाई पर उतर आए।

पलक झपकते बम फटने लगे, गोली चलने लगी, छुरे घोंपे जाने लगे, कृपाणें म्यानों से बाहर आ गईं, तलवारें निकल आईं। 'सत श्री अकाल' और 'हर-हर महादेव' के नारे लगने लगे; 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' के नारे लगे और लाशों के ढेर बिछने लगे। जैसे तूफ़ान के आगे बाँध लगा हो, किन्तु प्रवाह बाँध को तोड़कर जैसे तीव्रता से आगे बढ़ता है, बिलकुल इसी प्रकार मुसलमान हिन्दू-सिक्खों पर टूट पड़े; न पुलिस आई, न फ़ौज आई। पुलिस के थोड़े-बहुत व्यक्ति जो पहले दिखाई देते थे, वे भी न जाने कहाँ गायब हो गए।

आगा साहब के बहुत क्रोधित होने पर भी पाँच सिक्ख उन्हें उठाकर

गड़बड़ से बाहर ले आए और मोटर में डालकर उन्हें लाहौर की सड़क पर छोड़ दिया।

सायंकाल जब प्रतिनिधियों ने आगा साहब के घर के खुले मैदान में चाय पीनी थी, उस समय सिपाही और जमादार लाशें इकट्ठी कर रहे थे।

सामने अँगीठी पर से चाय का निमन्त्रण-पत्र उठाकर कुलदीप ने खिड़की के मार्ग से बाहर फेंक दिया और खिड़की बन्द कर दी।

रात को सिक्खों की ओर से निमन्त्रण था। निमन्त्रण के स्थान पर वे गुरुद्वारे में एकत्रित होकर मौत की घड़ियाँ गिन रहे थे। दोपहर को जो लोग घर से निकले थे, फिर वापिस न आ सके। किसी को यह पता न था कि पीछे उसके बच्चों के साथ, उसकी पत्नी के साथ क्या बीत रही थी। सारे शहर में उस समय से कर्फ्यू लगा दिया गया था। जलसे से दौड़कर कई लोग गुरुद्वारे में आ छिपे और फिर वहाँ से निकलना कठिन हो गया।

अंधकार होते ही आग लगनी आरम्भ हुई। बारी-बारी हर मोहल्लों को लूटना आरम्भ कर दिया गया। लाहौर रेडियो-स्टेशन से पाकिस्तान की स्थापना के हर्षगीत बच्चों और जवान लड़कियों के क्रन्दनों में विलीन हो जाते!

फिसादियों ने पैट्रोल के टीन प्राप्त कर लिए थे, लारियाँ उनकी आज्ञा-पालन के लिए तत्पर कर दी गईं, बन्दूकों और पिस्तौलों को बताशों की भाँति बाँटा गया। पुलिस साथ जाकर आग लगवाती। यदि कोई हिन्दू या सिक्ख बाहर निकलने का प्रयत्न करता, नीचे आग लगी देखकर ऊपर से छलाँग लगाने का प्रयास करता, तो ऐसे पुरुषों और स्त्रियों को कर्फ्यू के कानून के अनुसार गोली से उड़ा दिया जाता।

कई मोहल्लों में लोगों को अकेला रखकर उनका गहना इत्यादि छीन-कर पुरुषों को गोली से उड़ा दिया गया। स्त्रियों को उनकी इच्छा पर छोड़ दिया गया कि चाहे वे इस्लाम स्वीकार कर लें चाहे अपनी आँखों के सामने अपने बच्चे कटते-मरते देख लें, अथवा हर किसी के सामने अपना सतीत्व, अपना मान और अपना धर्म नष्ट होता देखें।

सोहरणेशाह मन-ही-मन में सोचता कि यदि उनके घर पर आक्रमण हुआ तो वह सबको बता देगा कि सलमराई उसके मुसलमान-मित्र की निशानी है। सलमराई को अपमानित होता देखकर वह सोचता, उसकी आँखें फटकर बाहर आ जाएंगी।

और सलभराई दिल-ही-दिल में सोचती—यदि कहीं सोहरणेशाह से उसे अलग किया गया तो वह अपने सीने में छुरी भोंक लेगी।

फिसादियों ने पहले सिविल-लाइन की ओर से झाड़ू देना आरम्भ किया। आग के अलाव आकाश से बातें कर रहे थे। फायर-ब्रिगेड वालों को आज पाकिस्तान की स्थापना के सम्बन्ध में छुट्टी थी।

कपड़े सीने वाली मशीनें, रेडियो-सैट, ग्रामोफोन, सोफासैट, चाँदी के बर्तन, कपड़ों से भरे संदूक, दीवारों पर टाँगने वाली घड़ियाँ, साइकलें, पलंग, श्रृंगार मेजें, कुर्सियाँ, घरों का अन्य सामान कन्धों पर, सिरों पर उठाये हुए लुटेरे च्यूँटियों के समान सड़कों पर घूम रहे थे।

बाजारों में हिन्दुओं और सिक्खों की दुकानें तोड़कर माल लूटा गया, लोग कपड़ों के थानों-के-थान उठाकर ले गए, बूटों की गठड़ियाँ बाँधकर दौड़ते मिले। घड़ियों और फौंटेनपैनों से जेबें भरकर ले गए। मिठाई वाली दुकानों में मानवों की आतंरिक बर्बरता ने मिठाई वालों को मारकर स्वतन्त्रता का त्यौहार मनाया। रंगारंग की मिठाइयाँ जी-भरकर खाई गई और मुर्दों के मुँह में बलात् ठोंस दी गईं।

नौजवान स्त्रियों को पकड़-पकड़कर साथ के गुरुद्वारों अथवा मन्दिरों में ले जाया गया, और वहाँ मूर्तियों के सामने मूर्तियों के उपासकों का अपमान किया गया। माताओं के सामने बेटियों का और बेटियों के सामने माताओं का सतीत्व भंग किया जाता।

नवयुवक और बूढ़ों के मुँह से गोमांस लगाया गया और फिर 'पाकिस्तान जिन्दाबाद' कहलवाकर उन्हें मुँह के बल गिरा दिया जाता। बच्चों को उनके माँ-बाप के सामने नेजों पर उछाल दिया जाता, लहरा दिया जाता।

बहुतों को मारकर, बहुतों को धमकाकर, बहुतों को लालच देकर, माल-असबाब का पता लगाया जाता और हाथोंहाथ उस माल को लोट लिया जाता।

आधी रात को जब लूटमार का बाज़ार गर्म था, तो नये डिप्टी-कमिश्नर का लड़का पुलिस की एक लारी लेकर कुलवन्त के घर आया। कुलवंत और रशीद कालेज के मित्र थे।

जिस प्रकार वे सब-के-सब तीन कपड़ों में थे, बिलकुल उन्हीं तीन कपड़ों में कुलवन्त, कुलदीप और उनका शेष परिवार लारी में बैठ गया। मार्ग में उन्होंने सोहणेशाह और सतभराई को भी लारी पर चढ़ा लिया।

और रात के लगभग एक बजे लारी सबको खालसा कालेज के शरणार्थी-कैंप में ले आई। कुलवन्त और उसके घर वालों को समझ नहीं आती थी कि शरणार्थी कैम्प में कहाँ खड़े हों और कहाँ बैठें।

सोहणेशाह और सतभराई लारी से उतरते ही सन्तोषपूर्वक एक स्थान पर अधिकार जमाकर बैठ गए।